

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १४	नवम्बर २००९ (४, ५ दिसम्बर को प्रेषित)	अंक-३
संस्थापक-संरक्षक श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज संरक्षक एवं प्रकाशक डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी) प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा 220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545 सहसम्पादक डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001 दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755 प्रबन्ध सम्पादक श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001 0120-2756891, मो०- 09810949921 सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं) डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779 श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989 श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379 श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338 श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852 डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र : श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र० 485331 07670-265478, 05198-224413 वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल) दूरभाष-01334-260323 श्री गीता ज्ञान मन्दिर भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) दूरभाष-0281-2364465 पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता आचार्य दिवाकर शर्मा, 220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545	

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (५५)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८६)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	१०
५.	रासपञ्चाध्यायी विमर्श (५)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१२
६.	आज राघव मगन	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१४
७.	वन्दे मातरम्	प्रस्तुति-विवेकानन्द केन्द्र	१४
८.	भारत माता की बिन्दी हिन्दी	डॉ० हरप्रसार स्थापक 'दिव्य'	१५
९.	हिन्दु धर्म ग्रंथों का परिचय	डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल	१६
१०.	श्रीरामभद्राचार्यकं पञ्चकम्	श्री रामानुग्रह शर्मा (राँची)	१९
११.	जब हनुमान जी की प्रस्तर-प्रतिमा.....	साहित्य-वारिधि डॉ० हरिमोहनलाल श्रीवास्तव	२०
१२.	तू राम शरण में जा	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	२२
१३.	शरणागति में सभी का अधिकार है	स्वामी रामसुखदास जी महाराज	२३
१४.	भगवद्भक्त श्रीरैदास जी	प्रस्तुति-श्रीमती सरिता त्रिपाठी (मुरादनगर)	२७
१५.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम	प्रस्तुति- पूज्या बुआ जी	३०
१६.	बिसरे न छन भर मोहे	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	३१
१७.	हे देवगुरु हे जगद्गुरु.....	श्री जगदीश प्रसाद शर्मा	३१
१८.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो० 9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

सदाचरण का पालन करना ही चाहिए

महाभारत का वचन है- वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् । अर्थात् वृत्त जिसे आचरण कहा जाता है उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। कारण स्पष्ट है आचारहीन न पुनन्तिवेदाः अर्थात् आचरणहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आचरणहीन व्यक्ति व्यक्ति और समष्टि सभी के लिए घातक होता है। दुराचरण का ही दुष्परिणाम है कि मनु भगवान् की सन्तान कहे जाने वाला जो मनुष्य सदाचरण के कारण विश्वगुरु बनकर पुजता था वह आज गिरते हुए खानपान से, आदर्शों की उपेक्षा से, जीवनमूल्यों की अवमानना से तथा भोगवादी बनने से विश्वमञ्च पर उपेक्षित और नगण्य होता जा रहा है। भले ही भौतिक सुखों तथा नश्वर उपाधियों का अम्बार मानव के पक्ष में आता हो किन्तु हमको हमारा प्राणधन जिसे सदाचरण अथवा धर्माचरण कहते हैं यदि हमसे सुदूर होता जा रहा है तो हमें एकबार पुनः अपने व्यक्तिगत और समष्टिगत आचरण को शुद्ध करना चाहिए। भारतीय जनमानस की पहचान भौतिक चाकचिक्य से नहीं है अपितु मौलिकता की रक्षा करने से है। लिखने में संकोच होता है कि आज हिन्दु जनमानस खानपान में बहुत विवेकहीन हो गया है। भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना कहीं भी कुछ भी खाकर पेट भर रहा है। जहाँ सावधानी रखनी चाहिए वहाँ तो शिथिलता है और जहाँ शिथिलता ही रखनी चाहिए वहाँ अधिक ध्यान है। इसी का दुष्परिणाम है कि मानव की बुद्धि शुद्ध नहीं है शरीर में दुर्गुण अधिक हो गए हैं इतना ही नहीं न उसे राष्ट्र की अस्मिता का ध्यान है, न उसे देश की रक्षा से कोई लेना देना है, भौतिक सुखों के संग्रह में वह व्यस्त है, त्याज्य वस्तुओं का दास बना हुआ है। धर्मविहीना राजनीति में तो इतनी अधिक गिरावट है जिसके वर्णन में लेखनी काँप उठती है। तुष्टिकरणरूप ताड़का भारत को गारत करने पर तुली है।

अब भी समय है जागने का और जाग्रत समाज को संघटित करने का। अभक्ष्य का त्याग और अपेय की उपेक्षा, भौतिक साधनों की मृगतृष्णा का मोह छोड़कर शुद्ध सात्त्विक वस्तुओं का सेवन और भारतीय परम्परा के अनुरूप जीवनशैली बनाने का सभी को अभ्यास करना चाहिए। बहुत आवश्यक है कि सरकार इस प्रवृत्ति को आश्रय दे, न कि कुचलने का कुचक्र चले। सरकार के समर्थन से तथा अनेक सामाजिक संघटनों के सहयोग से सामान्य व्यक्ति को भी शद्ध और सस्ता समान प्राप्त होगा। भारतीयता का पालन करने वाले महानुभावों को सन्तोष भी प्राप्त होगा। नमो राघवाय।

आचार्य दिवाकर शर्मा प्रधान सम्पादक से केवल
मोबाइल नं०- 09971527545 पर ही सम्पर्क करें

आचार्य दिवाकर शर्मा
प्रधान सम्पादक

(गतांक से आगे)

वाल्मीकिरामायण सुधा (५५)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

अब सुन्दरकाण्ड में प्रवेश कर रहे हैं। परन्तु महर्षि वाल्मीकि का सुन्दरकाण्ड बहुत विलक्षण है। महर्षि ने जैसा देखा वैसा लिखा। वे तो ऋषि हैं। सुन्दरकाण्ड के लिए टीकाकार कहते हैं।

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरः कपि।

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ।।

अर्थात् सुन्दरकाण्ड में क्या नहीं सुन्दर है सब कुछ सुन्दर है। हनुमान जी महाराज अब चलेंगे। इस पर्वत के दो नाम हैं जहाँ से चल रहे हैं- एक महेन्द्राचल और दूसरा नाम है सुन्दराचल। क्योंकि सुन्दराचल से उछलकर समुद्र का लंघन करेंगे इसलिए भी इसका नाम सुन्दरकाण्ड हो गया। रावण के तीन शिखर हैं त्रिकूट पर्वत पर एक शिखर जहाँ रावण रहता है उसका नाम कनकशिखर है- 'कनककोटि विचित्रमणिकृत सुन्दरायतना घना'। दूसरे शिखर का नाम है सुबेल शिखर जहाँ रावण का युद्ध स्थल है जहाँ रावण का युद्ध होगा और तीसरा शिखर सुन्दर शिखर है जहाँ अशोकवाटिका है जहाँ सीता जी विराज रही हैं। क्योंकि सुन्दर शिखर पर हनुमान जी महाराज सीता जी के दर्शन करेंगे इसलिए भी इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड पड़ गया। इसमें सब कुछ सुन्दर है। काव्य भी सुन्दर है सीता जी भी सुन्दर हैं, हनुमान जी भी सुन्दर हैं, राम जी भी सुन्दर हैं। एक बार मैंने इसके चालीस कारण गिनाये थे। सुन्दरकाण्ड में चलते हैं-

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।

इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि।।

जिन्हें रावण ले गया है अथवा जिनके द्वारा

रावण स्वयं मरण तक पहुँचा दिया गया है अथवा रावण की नीच राज्यलक्ष्मी का जिनके द्वारा विनाश किया जा चुका है ऐसी सीता जी को खोजने के लिए हनुमान जी चल पड़े। कोश में पद शब्द के अनेक अर्थ कहे गये हैं- पदं व्यवसितत्राण स्थान लक्ष्मांश्चि वस्तुषु व्यवसित, त्राण, स्थान, लक्ष्म, अंग्रि (चरण) और वस्तु। हनुमान यहाँ छः वस्तु खोज रहे हैं। व्यवसित-सीता जी का निश्चय क्या है? सीता जी का क्या चाहती हैं? क्या सीता जी रावण को मेरे द्वारा मरवाना चाहती हैं या श्रीराम जी के द्वारा उनका मन क्या है? सीता जी का निश्चय क्या है? हनुमान जी हृदयाकाश में सोच रहे हैं कि सीताजी ने क्या सोचा है? यदि सीता जी की आज्ञा हो कि मैं रावण का वध करूँ तब तो विलम्ब नहीं होना चाहिए। अभी मैं रावण का गला पकड़कर लाता हूँ। यदि वे मेरे द्वारा वध उचित नहीं मान रही हैं तो उसकी सेना का नाश कर दूँगा। सोचता हूँ पूरी लंका को मसल दूँ। परन्तु नहीं, यदि पूरी लंका को मसलूँगा तो लंका में विभीषण भी तो आ जायगा। लगता है सीता जी विभीषण का त्राण चाह रही हैं। फिर हनुमान जी के मन में आया कि विभीषण को बाहर निकालकर लंका को ही रौंद डालूँ। ध्यान आया कि लंका के स्थान को नष्टभ्रष्ट नहीं करना होगा क्योंकि जब तुलसी के बिरवा भी तो नष्ट हो जायेंगे तब विभीषण जी पूजा कहाँ करेंगे? लक्ष्म-सोचा कि पूरी लंका के चिह्न मिटा दूँ। नहीं क्योंकि लंका के चिह्न मिटाने पर मुझे ही (हनुमान को) परेशानी पड़ेगी। क्योंकि-

रामायुध अंकित गृह शोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरषि कपिराइ।।

अतः लंका के चिह्न नहीं मिटाने। अंग्रि- कहाँ सीता जी के चरण पड़े हैं वे देखने होंगे। वस्तु-लंका जी की कौन वस्तु सीता जी को भाती है वही नष्ट नहीं की जायेगी। लंका का सब कुछ नष्ट होगा पर अशोकवृक्ष बचा रहेगा क्योंकि उसी के नीचे सीता भगवती विराजमान हैं।

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः।

समुद्रग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवा बभौ।।

हनुमान जी महाराज ऐसा दुष्कर कर्म करने जा रहे हैं जो किसी के द्वारा किया नहीं जा सकता। टीकाकार तो हनुमान जी की मस्ती और स्वरूप को साँड के समान कह रहे हैं परन्तु वह उचित नहीं गवां पति का अर्थ शिव जी है अर्थात् साक्षात् शिव जी ही मानो लंका का ध्वंस करने जा रहे हैं। बोलो रुद्रावतार हनुमान जी महाराज की जय।

अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः।

धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम्।।

हनुमान जी भ्रमण करने लगे। महर्षि वाल्मीकि जी कहते हैं-

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे।

भूतेभ्यश्चांजलिं कृत्वा चकार गमने मतिम्।।

श्रीहनुमान जी सूर्य को, इन्द्र को, पवन को ब्रह्मा जी और भूतों (देवयोनिविशेषों) को प्रणाम करके- अंजलि प्राङ् मुखः कुर्वन् पवनायात्मयोनये। ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम्।।

सबको प्रणाम करके अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया। तदनन्तर अपने कार्य में कुशल हनुमान जी दक्षिण दिशा में जाने के लिए बढ़े।

अस कहि नाइ सबन कहँ माथा।

चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।।

हनुमान जी महाराज चल रहे हैं, सब लोग देख रहे हैं। महर्षि वर्णन करते हैं-

प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः।

ववृधे रामवृद्धयर्थं समुद्र इव पर्वसु।।

बड़े बड़े वानरों ने देखा जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आने लगता है उसी प्रकार दृढ़ निश्चय वाले हनुमान जी श्रीराम की कार्यसिद्धि के लिए बढ़ने लगे। इस दृश्य का वर्णन कवितावली में गोस्वामी जी महाराज करते हैं-

जब अंगदादिन की मति गति मन्द भई

पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।

साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ

चितवत चहुँ ओर औरनि को कलु गो।।

तुलसी रसातल ते निकसि सलिल आयो

कोल कलमल्यो अति कमठ को बलु गो।

चारिहू चरन के चपेट चाँपें चिपिट गो

उचकैं उचकि चारि अंगुल अचलु गो।।

हनुमान जी महाराज को कूदने में पलमात्र की भी देरी नहीं हुई। वे साहसपूर्वक सहसा कौतुक से ही पर्वत पर चारों ओर देखने लगे। इससे शत्रुओं की शान्ति भंग हो गई। रसातल से जल निकल आया। वाराह भगवान कलमला गये तथा शेष और कच्छप बलहीन हो गये। चरणों से जोर से दबाने से पर्वत पृथ्वी में चिपट गया और फिर हनुमान जी के कूदने पर चार अंगुल उचक गया। बोलो वीर बजरंग बली की जय। सिद्ध, गन्धर्वः विद्याधर स्तुति कर रहे हैं-

एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारुतात्मजः।

तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम्।।

अहा! ये पर्वत के समान महाकाय, महान वेगशाली पवनपुत्र हनुमान जी वरुणालय समुद्र को पार करना चाहते हैं-

रामार्थ वानरार्थ च चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति॥

हनुमान जी महाराज राम जी के लिए तथा वानरों के जीवन की रक्षा करने के लिए आज सम्पूर्ण सागर को पार करना चाहते हैं जो कि बहुत कठिन कार्य है सब लोग जयजयकार करते हैं। हनुमान जी ने वानरों को देखा, सबको प्रणाम किया और कहा- वानरो! यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः। गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंकां रावणपालिताम्।।

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी का छोड़ा हुआ बाण वायुवेग से चलता है। उसी प्रकार मैं रावणपालित लङ्कापुरी में जाऊँगा। गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं-

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।

ताही भाँति चलेउ हनुमाना॥

हनुमान जी राम जी के बाण की भाँति चले जा रहे हैं। राम जी के बाण का नियम है कि वह काम करके फिर तरकस में लौट आता है। इसी प्रकार हनुमान जी अपना कार्य करके फिर वापस लौट आयेंगे। राम जी का बाण काम करके पीछे चला जाता है इसी प्रकार हनुमान जी भी काम तो सारा करेंगे पर सबके पीछे रहेंगे। तभी तो अंगद जी रावण से कहते हैं कि जिस (हनुमान जी) को तुमने बहुत बड़ा वीर बताया वह सुग्रीव का छोटा सा सेवक है। यहाँ का पूरा प्रसंग लगाने के लिए आगे का दोहा है। वह दोहा जब तक आप ठीक से नहीं समझेंगे तब तक यहाँ का रामायण जी का प्रसंग नहीं लगेगा।

वक्र उक्ति धनुवचन सर हृदय दहेउ रिपु कीश।
प्रति उत्तर सङ्गसिन मनहु काढ़त भट दशशीशा॥

यहाँ वक्रोक्ति है-हे रावण! जिसको तुमने बहुत वीर कहा क्या वह सुग्रीव का छोटा सा दूत है? मूर्ख! तू भूल रहा है-

चलइ बहुत सो वीर न होई।

पठवा खबर लेन हम सोई।।

क्या हमने खबर लेने भेजे थे? तुम्हारी खबर लेने भेजे थे? अर्थात् हमने तुम्हारा समाचार लेने नहीं भेजे थे हम ने तो तुम्हारी सेना के धुरंधर वीरों को मारने के लिए भेजे थे। वहाँ पूरी वक्रोक्ति है। इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे में-

सत्य नगर कपि जारेउ बिन प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहुँ तेहि भय रहा लुकाइ॥

प्रश्न है-क्या तुम सत्य बोल रहे हो? क्या प्रभु की आज्ञा के बिना उन्होंने नगर को जलाया? क्या वे फिर सुग्रीव के पास नहीं गये? क्या वे सुग्रीव से भय से छिपे रहे? अर्थात् नहीं। रामायण सरल है पर सब कर्कश सिद्धान्त आर्येंगे तब तो पढ़ना ही पड़ेगा। कभी कभी गलत अर्थ करने से बहुत अनर्थ हो जाता है। जैसे-

जो मम चरन करसि शठ टारी।

फिरिहिं रामसीता मैं हारी॥

इतनी छूट अंगद को नहीं हो सकती कि वह कह दे कि मैं राम सीता को हार जाऊँगा। वास्तविक अर्थ तो यह है कि यदि तुम मेरा चरण हटा सको तो सीताराम जी तो जायेंगे ही परन्तु मैं हार मान कर वानरीसेना को रोक लूँगा। राम बल की मर्यादा होती है। इतना अधिकार तो अभी भी राजनीति में नहीं दिया जाता राजदूत को, जो राजा को चैलेंज करे। जो लोग ठीक से पढ़ते नहीं हैं वे ही अर्थ का अनर्थ करते हैं। सब पूर्वापर देखकर अर्थ करना चाहिए। हनुमान जी महाराज ने कह दिया कि मैं राम जी के बाण के समान जाऊँगा। राम जी का बाण सोने का होता है हनुमान जी महाराज भी सोने के हैं-

स्वर्णशैलाभदेहम्। जब हनुमान जी चल पड़े तब सागर ने सोचा-

तस्मिन् प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति।
इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः॥
जलनिधि रघुपति दूत विचारी।
कह मैनाक होहु श्रमहारी॥

समुद्र ने सोचा मुझे सगर ने बनाया। इक्ष्वाकु वंश के ये सचिव हैं यदि इनकी सहायता नहीं करूँगा तो मेरी निन्दा अवश्य होगी। यहाँ तो सहायता कर रहे हैं वहाँ अड़ गये कि मैं मार्ग नहीं दूँगा। जब कहा-
विनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।

इसका कैसे समाधान किया जाय? इसका समाधान यह है कि राम जी की कोमलता देखकर समुद्र को सन्देह हो गया कि इतने छोटे बालक रावण को कैसे मारेंगे? अतः राम जी के पौरुष और बल की परीक्षा करने के लिए समुद्र ने तीन दिन तक यह नाटक किया। जब राम जी ने धनुष पर बाण चढ़ाया तो समुद्र खौल उठा तब कहा त्राहि त्राहि। तब राम जी ने बाण को वापिस लिया। लक्ष्मण जी ने कहा कि अब तक नाटक क्यों कर रहे थे? समुद्र ने कहा- तुम बालक हो। मैं राम जी का बल और पराक्रम देख रहा था। मार्ग में समुद्र में स्थित मैनाक पर्वत ने हनुमान जी से विश्राम करने की प्रार्थना की मैनाक ने हनुमान जी से कहा आपसे मेरे दो सम्बन्ध हैं। मैं आपका साला भी हूँ और चाचा भी हूँ। हनुमान जी मुस्कुराये बोले साले कैसे? मैनाक ने कहा यदि आप शिव हैं तो मैं पार्वती जी का भाई हूँ तब आपका साला हुआ। यदि आप पवन के पुत्र हैं तो मैं पवन का भाई हूँ तो आपका चाचा हुआ। हनुमान जी ने दोनों सम्बन्धों का सम्मान किया। साला मानकर तो हाथ मिला लिया- 'हनुमान तेहि परस कर' और

चाचा मानकर 'पुनि कीन्ह प्रणाम' प्रणाम कर लिया। 'राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहा विश्राम' कह कर जाने की अनुमति माँगी। महर्षि वाल्मीकि जी लिखते हैं-

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा॥

हनुमान जी ने कहा मेरा कार्यकाल समाप्त हो रहा है (क्योंकि एक महीने का जो सीता जी को खोज लाने का समय मिला था उसका यह अन्तिम दिन है) और तीसरा पहर है दिन बीत रहा है मुझे आज रात्रि तक ही सीता जी को देख लेना है अन्यथा अनर्थ हो जायगा। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक मैं सीता जी को नहीं देख लूँगा तब तक विश्राम नहीं करूँगा।

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः।

जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव॥

इस प्रकार मैनाक जी को प्रणाम कर और आकाश में ऊपर उठकर हनुमान जी चल पड़े। हनुमान जी को आकाश में जाते हुए देखकर-

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।

अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम्॥

तब देवताओं ने नागमाता सुरसा को बुलाया-

जात पवनसुत देवन देखा।

जानै कहँ बल बुद्धि विशेषा॥

सुरसा नाम अहिन के माता।

पठएनि आइ कही तेहिं बाता॥

सुरसा ने कहा ए! देवताओ आपने मुझे भोजन दिया है-

अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्।
क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८६)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

व्याख्या- यहाँ कर्म अकर्म के उपलक्षण से विकर्म का बोध है। 'कवि' शब्द का अर्थ है मनीषी अथवा श्रुति और स्मृति में कवि शब्द परमेश्वर के लिए ही आया है जैसे ई० उ० ८ में कविर्मनीषां और (गीता ८/९) में कविं पुराणं तात्पर्य यह है कि कवि अर्थात् मेरे अंश परशुराम बलराम और बुद्ध भी कर्म, विकर्म और अकर्म के सम्बन्ध में मोहित हैं। परशुराम, मेरे अंशावतार होते हुए भी पिता की आज्ञा को श्रेष्ठ मानकर माँ का वध कर बैठे। जबकि वह विकर्म था। क्योंकि पिता से माता दस गुनी बड़ी होती है। इस प्रकार ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने शस्त्र धारण किया। यदि कहें कि सहस्रबाहु को मारने के लिए वह उचित ही था परन्तु उसके अनन्तर बार-बार निर्दोष क्षत्रियों का संहार करना सर्वथा अनुचित था। इसीलिए श्रीरामावतार में परिपूर्णतम भगवान श्रीराम ने उनसे धनुषबाण ले लिया। ठीक तुम्हारी भी परिस्थिति वही है। परशुराम मेरे अंश थे, तुम मेरी विभूति हो। वे ब्राह्मण होकर क्षत्रियोचित कर्म कर रहे थे। शस्त्र धारण उनके लिए विकर्म था। तुम क्षत्रिय होकर ब्राह्मणोचित काम कर रहे हो। शस्त्र त्याग तुम्हारा विकर्म है। परशुराम से भगवान राम ने धनुष बाण लिया था और यहाँ मैं भी तुमसे शोक और मोह लूँगा। परशुराम जी को श्रीराम द्वारा पूर्व ही तोड़े गये जीर्ण से धनुष पर ममत्व था और तुमको मेरे द्वारा मारे गये जीर्ण भीष्मादि के

शरीरों पर ममत्व है। परशुराम को कुमार श्रीलक्ष्मण के सम्वाद में अक्षर अक्षर पुरुषोत्तम का ज्ञान हुआ और तुम्हें भी गीता के पन्द्रहवें अध्याय में तीनों का ज्ञान होगा। परशुराम श्रीराम के वचन से मोह मुक्त हुए थे और तुम मेरे वचन से। परशुराम, राम संवाद के पश्चात् सीताजी का रक्त सिन्दूर से शृंगार हुआ था और कृष्ण-अर्जुन सम्वाद के पश्चात् द्रौपदी का दुःशासन के रक्त से शृंगार होगा। वहाँ वरुण हुआ था यहाँ रण होगा। इसी प्रकार मेरे भ्राता बलराम को कर्म, विकर्म तथा अकर्म में सन्देह था। मुझे परमात्मा के रूप में जानकर भी वे स्यमन्तक मणि के सम्बन्ध में मेरे प्रति संदेह कर बैठे। जैसा कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भागवत जी में अक्रूर जी से कहते हैं-

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः।
किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति॥

(भा० १०/५७/३८)

अर्थात् हे अक्रूर जी जिस मणि को और लोग नहीं रख पाये वह आपके पास ही रहे केवल एक बार सभा में दिखा दीजिए। क्योंकि मेरे बड़े भ्राता बलराम भी मणि के सम्बन्ध में मुझ पर विश्वास नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार विकर्म में लगे हुए दुर्योधन का बलराम जी ने पक्ष लिया जैसा कि श्रीमद् भागवत में कहते हैं-

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर।

एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ।।
तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः
न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ।।

(भा० १०/७९/२६/२७)

बलराम कहने लगे हे दुर्योधन तथा हे भीमसेन
तुम दोनों समान बल वाले हो। एक शक्ति में अधिक
है तो एक शिक्षा में। इसलिए दोनों में किसी एक का
जय पराजय करना निश्चित करना कठिन है। अतः
यह युद्ध समाप्त हो इसका कोई फल नहीं है।
महाभारत में बलराम जी हल लेकर भीमसेन को
मारने दौड़ पड़े जैसे-

ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् वली।
तस्योर्ध्ववाहोः सदृशं रूपमासीन्मेमहात्मनः।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ।।
तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद्बलवद्वली ।।

(शल्य म० भा० ६०/९, १०, ११)

इतना ही नहीं अधर्म में लगे दुर्योधन के प्रति
बलराम जी के आशीर्वाद भी सुने जायेंगे जैसे-
हत्वा धर्मेण राजानं धर्मत्मानं सुयोधनम् ।
जिह्वयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डव ।।
दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम्।
ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः ।।
युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च।
हुत्वाऽऽत्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः ।।

(म० भा० शल्य ६०/२७, २८, २९)

इसी प्रकार मेरे अंशावतार बुद्ध ने वेद विरुद्ध
विकर्म का ही उपदेश किया। इसलिए कर्म का उपदेश
करूँगा। यहाँ आकार का प्रश्लेष करके अकर्म का

और उपलक्षणसे विकर्म का उपदेश समझना चाहिए।
जिन तीनों को जानकर तुम अशुभ संसार से मुक्त हो
जाओगे। ॥श्री॥

संगति- अब पूर्व प्रतिज्ञा अनुसार कर्म, विकर्म
और अकर्म की चर्चा करते हैं। उनमें वर्णाश्रम से
प्राप्त वेदविहित अनुष्ठान को कर्म कहते हैं। वेद विहित
से विरुद्ध को विकर्म कहते हैं और 'कर्तृत्व शून्यत्व'
अथा फलाभिसन्धि से रहित वेदविहित कर्म को अकर्म
तथा कर्म के अभाव को अकर्म कहते हैं। इन्हीं तीनों
की व्याख्या का प्रारम्भ करते हुए भगवान कहते हैं-
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।।४/१७

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! तुम्हें
कर्म के विषय में समझना है विकर्म के विषय में भी
समझना है और अकर्म के विषय में भी समझना है
क्योंकि कर्म, विकर्म और अकर्म की गति बहुत गहन
है। यहाँ 'हि' हेत्वर्थक और 'अपि' निश्चयार्थक है और
द्वितीय तथा तृतीय चरण में प्रयुक्त 'च' समुच्चयार्थक
है। अतः इन तीनों के सम्बन्ध में तुम्हें समझना है
अथवा 'कर्मणः' विकर्मणः, और अकर्मणः इन तीनों
में कर्म के अर्थ में सम्बन्ध षष्ठी है। अर्थात् तुम्हें कर्म,
विकर्म और अकर्म तीनों समझने में 'गति' शब्द
ज्ञानार्थक है। यहाँ कर्मणः विकर्म औश्च अकर्म इन
दोनों का उपलक्षण है। गहन शब्द का तात्पर्य है जैसे
मेरी सहायता से तुमने खाण्डव वन को भस्म किया
उसी प्रकार इस बार कर्मवन को जला डालो। 'गहनं
गह्वरे वने' गहन जंगल को वन कहते हैं। ॥श्री॥

क्रमशः.....

गतांक से आगे-

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत 'विद्यावागीश'

दो आक्षेप

(२३) कई आक्षेप करते हैं कि मुद्गल नामक ब्राह्मण ने कार्तिक-माहात्म्य में (१५।५५-५६) 'इत्युक्तः सोऽपतद् वन्हौ सर्वेषामेव पश्यताम्। मुद्गलस्तु तदा क्रोधात् शिखामुत्पाटयत् स्विकाम्। ततस्त्वद्यापि तद्गोत्रे मौद्गला अशिखाभवन्' अपनी शिखा उखाड़ डाली थी; अतः शिखा रखना न रखना अपनी इच्छा पर है' यह बात ठीक नहीं। रागद्वेष से किया जाने वाला कार्य प्रमाणभूत नहीं होता। जब चौल राजा से बहुत यज्ञदान आदि अपने आचार्यत्व में कराने पर भी राजगुरु मुद्गल ने उसकी सद्गति प्राप्ति न देखी, और उसके प्रतिद्वन्द्वी विष्णुदास ब्राह्मण की साधारण कार्तिकव्रत आदि से भी विमान प्राप्ति देखी; इस खेद से राजा का यज्ञकुण्ड की अग्नि में गिर जाना देखा; तो क्रोध से अपनी शिखा उखाड़ डाली। वह उनका क्रोधमूलक विरुद्ध आचार था। उन्हीं मुद्गल का अनुकरण मुद्गल गोत्रवालों को भी उचित नहीं; अन्यो का तो क्या कहना? इतिहास वर्णित सभी व्यवहार आचरणीय नहीं हो जाता। क्योंकि- "देश-जाति-कुलधर्माश्च आम्नायैरविरुदाः प्रमाणम्" (गौतम-वर्गसूत्र २।२।२०) शिखात्याग किन्हीं का कुलधर्म होने पर भी अम्नाय से विरुद्ध ही है, अतः बाह्य नहीं। 'श्रियै शिखा' (यजु० वा० सं० १९/९२) इस आम्नाय वचन से शिखा का स्वीकार अनिवार्य है। 'मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये' (४०।७) इस 'काठक-गृह्यसूत्र' के सूत्र पर देवपालने लिखा है- 'निःशिखत्वं तु अमङ्गलधर्मोऽरिष्टहेतुः'। तथा च पठन्ति - 'अमेध्यमेतत् शिरोऽशिखम्' 'यत्र बाणाः सम्पतन्ति

कुमारा विशिखा इव' इति निन्दावादः, यन्मूलं शिखा कर्मस्मरणाम्'। 'खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत्। कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम्' यह 'नागदेव' का वचन खल्वाटत्व में अनुसरणीय है। तब कुशा की शिखा बनावे। शिखा को काटना पहले समय में तब होता था; जब किसी को मृत्युदण्ड जैसा दण्ड देना हो। तब उसे स्वयं कटवा डालना अपने आपको मृत्युदण्ड देना है।

(२४) कई महोदय उपनयनकाल में 'पारस्करगृह्यसूत्र' में 'पर्युप्तशिरसमलङ्कृतमानयन्ति' इत्यादि वचनों से 'मुण्डो वा' इस मनु-वचन से, 'सशिखं वपनं कार्यम् आम्नानाद् ब्रह्मचारिणाम्' इत्यादि छन्दोगपरिशिष्ट के वचन से चूड़ाकरण में लड़के का शिखा-सहित मुण्डन मानते हैं- वह भी ठीक नहीं, क्योंकि गृह्यसूत्रों में शिखा छोड़कर ही मुण्डन कहा है, यह हम पूर्व कह ही चुके हैं। इसलिए इस संस्कार का नाम भी 'चूड़ाकरण' है, 'चूड़ायाः-शिखायाः करणम् स्थापनम्। तब चूड़ा का करण शिखातिरिक्त केश मुण्डन से ही हो सकता है। 'तं च (कुमारं) पर्युप्तशिरसम्' (२।२।५) इस पारस्कर के वचन में 'परितः-सर्वतः उत्पत्तम्-मुण्डितम्' यह देखकर मध्य शिखा का काटना तो ठीक नहीं। 'परिक्रमा' शब्द में जैसे 'परितः क्रमणम्' अर्थ में मध्यवाले देवप्रतिमास्थान को छोड़कर ही चारों ओर परिक्रमा होती है, 'पर्युक्षण' शब्द में जैसे 'परितः उक्षणम्' अर्थ में यज्ञकुण्ड के मध्य वाले प्रदेश को छोड़कर ही चारों ओर जल सेचन होता है, 'परितः कृष्णं गोपाः' इसमें भी गोपों की स्थिति मध्यस्थित कृष्ण अधिष्ठित देश

को छोड़कर ही सर्वसम्मत है; वैसे ही सिर के मध्यदेश (शिखा) को छोड़कर ही मुण्डन 'पर्युप्तशिरसम्' शब्द से उपदिष्ट है, सम्पूर्ण नहीं। इसी कारण 'तासां (गौणशिखानां) मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम्' यह 'निर्णयसिन्धु' में कहा है; 'उपनयनकाले मध्यशिखेतरशिखानां वपनं कृत्वा मध्यभाग एव उपनयनोत्तरं शिखा कार्या' यह 'धर्मसिन्धु' में कहा है। तब मध्यशिखा का मुण्डन कहीं भी विहित नहीं।

अथवा 'एते लूनशिखास्तत्र दशनैरचिरोद्गतैः। कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव' इस 'वीरमित्रोदय' - (संस्कार-प्रकाश, उपनीत-धर्मप्रकरण) स्थित 'विष्णु-पुराण' के वचन से कई छन्दोगशाखा वालों का, अथवा 'मुण्डा भृगवः' (४०।४) इस 'काठकगृह्यसूत्र' के वचन से भृगुगोत्रियों का शिखा सहित मुण्डन मान भी लिया जावे; तथापि इनसे भिन्नो का वैसा व्यवहार कैसे हो सकता है? एकदेशिक व्यवहार का सार्वदेशिकता में उपयोग करने में कोई प्रमाण नहीं।

(२५) अनेक का यह विचार है कि- 'चूड़ाकरण में मुण्डन इसलिए हुआ करता है कि- लड़का माता के गर्भ से जिन बालों को लाया; उनका मुण्डन कर्तव्य ही है; क्योंकि-उन गर्भज केशों में अशुद्धता तथा हानिप्रद गैस हुआ करती हैं; तब माता के गर्भ से आये हुए बालों को शिखा के लिए ही क्यों रखा जावे? इस कारण उनके सारे सिर का ही मुण्डन इष्ट है' परन्तु यह बात 'चूड़ाकरण' से विरुद्ध ही है; सर्वमुण्डन में 'चूड़ा-करण' किस प्रकार हो सकता है? तथापि उनके भी मत में बालक के अपने बालों के उत्पन्न होने के बाद शिखा का रखना इष्ट होता है; हमारे मत में तो मातृगर्भस्थ शिखाकेश स्वयं ही क्रम से गिर जाते हैं; क्रमशः नवीन केश उनके स्थान को

लेते जाते हैं। अतः शिखा के केशों का मुण्डन आवश्यक नहीं। शेष केशों का ही वहाँ मुँडाना सफल है। 'मुण्डो वा, जटिलो वा स्याद् अथवा स्याच्छिखाजटः (२/२१९) यह मनु-वचन उपकुर्वाण सामग ब्रह्मचारियों के लिए है- जैसा कि पूर्व 'विष्णु-पुराण' का संवाद दे चुके हैं, सर्वसाधारण के लिए नहीं। अथवा 'मुण्डः' से नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का बोध होता है; उनका संन्यासियों की तरह गेरुआ वस्त्र पहनने आदि का आचार होने से मुण्डन भी उनका उन्हीं की तरह शिखा-सहित हो जाता है। अस्तु-

इस प्रकार शिखा का स्थापन रहस्यमय होने से आवश्यक सिद्ध हुआ। परमुखापेक्षी, परानुकरणप्रवण तथा अकर्मण्य लोग ही दूसरों के अवगुणों को गुण जानते हुए, अपने गुणों को भी अवगुण जानते हैं; क्योंकि- अकर्मण्यता से उनकी विवेचना-शक्ति नष्ट हो जाती है; तभी वे अपने पूर्वजों से नियमित 'श्रियै शिखा' (यजु० १९/९२) इस वैदिक शोभा को भी अवहेलित करके शिखाहीनता को ही श्रीजनक मानते हैं; परन्तु इस प्रकार के दूसरों के अनुकरण में लगे व्यक्ति अपनी जाति एवम् अपने सम्प्रदाय तथा अपने धर्म के अहित-कारक होने से दूर से ही नमस्करणीय हैं। जो 'हैट' पहनने से तो सिर में भार नहीं समझते, परन्तु शिखा रखने से सिर में भार समझते हैं, लार्ड मैकाले के मानसिक दास परानुकरण-प्रवण वे वस्तुतः दयनीय हैं। यदि हिन्दुजाति शिखा को छोड़ देगी; तो उसके न होने पर निम्न हानियाँ होगी; तब अधिपति नामक सम्राट्भूत मर्मस्थानों की भी ग्लानि हो सकती है; जिससे शीत-उष्ण सहनशक्ति का नाश हो जा सकता है।

क्रमशः.....

(गतांक से आगे)

रासपञ्चाध्यायी विमर्श (५)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

गोपियाँ कहती हैं, हे बृजिनार्दन! आप हम पर प्रसन्न रहें। भगवान् ने कहा, बृजिनार्दन हमको क्यों कह रही हो? कहा, जनार्दन मे तो चार अक्षर हैं और आज आपके साथ हमारी पाँच प्रकार की क्रीड़ा होगी। आप हमसे पाँच प्रकार से खेलेंगे प्रभु। हमारी आत्मा से आप खेलेंगे, हमारे मन के साथ खेलेंगे, हमारी इन्द्रियों के साथ खेलेंगे, हमारी वाणी के साथ खेलेंगे और पुनः हमारे शरीर के साथ खेलेंगे। इसी दृष्टि से तो यहाँ पाँच अध्यायों का प्रस्ताव है। क्योंकि यहाँ भगवान् का गोपियों के साथ पंचरमण है। यदि आप हमारे साथ पाँच प्रकार से खेलेंगे तो आपका नाम भी तो पाँच अक्षरों का होना चाहिए। अतः यहाँ जनार्दन संगत नहीं बृजिनार्दन संगत होगा। कैसा है गोपियों का आनन्द। गोपियों ने कहा, हमने अपने घरों को छोड़ दिया है, “प्राप्ता विसृज्य वसतीः।” क्यों छोड़ा अपने घरों को? कहा, इसलिए छोड़ा, “त्वदुपासनाशाः” हमको आपकी उपासना की आशा है। अब हम आपके समीप बैठना चाहती हैं। उपासना में तो घर छूटता ही है क्यों छोड़ा? क्या दोष था उनमें? बोलीं, “त्वदुपासनाशाः” क्योंकि वे घर आपकी उपासना को खा रहे थे, “तव उपासनां अश्नन्ति इति त्वदुपासनाशाः” इसलिए हमने अपना घर छोड़ दिया है। और अब क्या चाहती हो? बोलीं, “त्वसुन्दरस्मित निरीक्षणतीव्रकाम-तप्तात्मनां” आपके सुन्दर चितवन और सुन्दर मुसकान को देखकर हमारे मन में आपकी सेवा की

तीव्र कामना हो गई है और यदि थोड़ा सा भी विलम्ब हुआ इस कामना की पूर्ति में तो हमारा शरीर जलभुन जायेगा। इसलिए हे पुरुषभूषण! हमको कुछ दीजिये। क्या दें? तो गोपियों ने कहा, “दास्यं” अपनी सेवा का सौभाग्य दीजिए। यही है रासपञ्चाध्यायी का आनन्द। ये जीवात्मा के साथ परमात्मा का खेल है। जीवात्मा के साथ परमात्मा की क्रीड़ा है और वो भी रात्रि में।

“या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥”

भगवान् गीता जी के द्वितीय अध्याय में कहते हैं कि तुम समझते हो? जब सब लोग सोते हैं तो संयमी जागता है और यहाँ रात्रि में सब सो रहे हैं। सारा संसार सो रहा है, क्योंकि रासलीला का प्रारम्भ निशीथ में हो रहा है। आज की भाषा में बोलूँ तो बारह बजे लगभग हो रहा है। जब सब लोग सो रहे हैं तब भगवान् गोपियों के साथ खेल रहे हैं। कोई असंयमी ऐसा कृत्य नहीं कर सकता। अतः आज भी अभी भी भगवान् खेल रहे हैं। समस्या इस बात कि है जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि जब तक हमारे जीवन में व्याकरण नहीं आ जाता अर्थात् जब तक हम शास्त्र को जीने का अभ्यास नहीं कर लेते तब तक हम वैदिक सिद्धान्त को नहीं समझ पाते। अब यह दायित्व वक्ता का है जब तक वक्ता शास्त्र को नहीं जीता तब तक वह शास्त्र का सिद्धान्तपीयूष पिला भी नहीं सकता। अतः वैदिक

सिद्धान्त अमृत को पिलाने के लिए शास्त्र को जीना पड़ेगा। उसमें भी श्रीमद्भागवत साक्षात् निगमकल्पतरु का फल हैं। वेद कल्पवृक्ष का सुन्दरतम फल है तो वेद के सिद्धान्त को समझने के लिए “मुखं व्याकरणं स्मृतम्” व्याकरण ही उसका मुख है। यदि मुख ही नहीं तो फिर वो बोलेगा कैसे? वेद से कोई कहे कि आप बोलिए, कुछ कहिए तो कहेगा कि जब मेरा मुख ही बन्द कर दिया आपने तो हम बोलेंगे कैसे? सो श्रुति माता कब बोलेंगी, जब उनका मुख ठीक होगा और आज आप देखते होंगे कि किसी के मुख में कैंसर हो जाता है तो वह नहीं बोल पाता है। कोई गूंगा हो जाता है तो नहीं बोल पाता है। तो हमने तो अपने प्रमाद के कारण वेद भगवान् के मुख को बन्द कर दिया है, सीं दिया है, उनके मुख की उपेक्षा कर दी है, इसीलिए हम वैदिक सिद्धान्तों को नहीं समझ पा रहे हैं और जब तक हमारे जीवन में व्याकरण नहीं आयेगा वह भी परमार्थ रूप में, जब तक हम व्याकरण को जीना नहीं सीख जायेंगे तब तक हम भगवान् के सिद्धान्तों को समझ नहीं पायेंगे। तब तक हमारी माँ श्रुति भगवती क्या कह रही हैं हम नहीं समझ पायेंगे। इसलिए मैं फिर अनुरोध कर रहा हूँ कि भगवान् को प्राप्त करने के लिए माँ श्रुति माता की शरण में जाना पड़ेगा और श्रुति माता को समझने के लिए उनके मुख व्याकरण की रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि वो समझायेंगी तो मुख से ही। छोटे से बालक को जब माता उसके पिता का परिचय देती है तो मुख का ही तो अवलम्ब लेती है। अतएव हमें व्याकरण को जीना पड़ेगा। व्याकरण का प्रयोग हमें जीविका के लिए नहीं व्याकरण का प्रयोग हमको जानकीजीवन अथवा राधिकाजीवन के लिए करना होगा। तात्पर्य यह है

कि जब तक हम रमण शब्द का अर्थ नहीं समझेंगे तब तक हमें रासपंचाध्यायी नहीं समझ में आयेगी और आज का दुर्भाग्य यह है कि मनुष्य रमण शब्द का बहुत ही अनुचित अर्थ समझने लगा है। इसीलिए उसका अधःपतन होता जा रहा है। रमण का अर्थ अनुचित अर्थों में नहीं लेना चाहिए। रमण का अर्थ स्त्री-पुरुष के ग्राम्य संयोग से नहीं समझना चाहिए। भगवान् पाणिनि कहते हैं कि “रमु क्रीडायाम्” पा० धा० पाठ ८५३ ‘रम्’ धातु का अर्थ है खेलना। वो भी किसका खेलना? जीवों के खेलने को प्रायः रमण नहीं कहते। किसकी क्रीड़ा के लिए रमण शब्द का प्रयोग होता है? बालक के लिए। हिन्दी में तो ऐसा नहीं दिखता परन्तु जब हम गुजराती भाषा में देखते हैं तो वहाँ ‘रम्’ धातु का प्रयोग बिल्कुल निर्दोष बालक की क्रीड़ा के अर्थ में किया जाता है। कहते हैं वहाँ के लोग (गुजराती में कहा जाता है कि-) “बाड़क रमकड़ाउनी साथे रमी रहू छे” बालक रमकड़ा माने खिलौने के साथ खेल रहा है और सौभाग्य से रासपंचाध्यायी में रम् धातु का प्रयोग ही बहुशः हुआ है। जैसे- “वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे।” भा० १०/२९/१ भगवान् ने रमण करने का मन बनाया, खेलने के लिए मन बनाया। यह नहीं लिखा कि “वीक्ष्य भोक्तुम्”। भोगार्थ मन भगवान् का नहीं बन रहा है। भगवान् के मन में बुभुक्षा नहीं है, भगवान् की भोग की इच्छा नहीं है। भगवान् को क्या लेना-देना भोग से। भगवान् अपने ऐश्वर्य के भाव से श्रीमद् भगवद् गीता में स्वभावतः बोल उठे, “तुम्हें पता है मेरी साधारण लीलायें देखकर लोग मुझ पर सन्देह करते हैं।” कौन हूँ मैं और कैसा है मेरा व्यक्तित्व? भगवान् बहुत गौरव और आत्मविश्वास के साथ बोल पड़े।

क्रमशः.....

आज राघव मगन

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

आज राघव मगन बाल सुख मोद में।
 कभी इस गोद में कभी उस गोद में॥
 जो है व्यापक निरामय निरंजन अगुण
 आज प्रगटे वही व्याप्य सुन्दर सगुण।
 पा के कोसल निवासी मुदित मोद में।
 कभी इस गोद में.....

केश घुँघराले कारे हैं प्यारी अलक
 नैन कजरारे खंजन सुहानी पलक।
 मानो खेल रहीं मछली दो पाथोद में।
 कभी इस गोद में

लेते पुलकित उछंगों में पुलकित लला
 मानो मिल गया धरा को है सोभग भला।
 झूम झूम चूमते हैं वदन सुप्रमोद में।
 कभी इस गोद में

सभी राम को निहार रहे अपलक नयन
 प्रेम पुलकित सजल नेत्र गद्गद नयन।
 रामभद्राचार्य हुलस रहे सुविनोद में
 कभी इस गोद में कभी उस गोद में॥

□□□

वन्दे मातरम्

□ प्रस्तुति- विवेकानन्द केन्द्र

सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां
 शस्य-श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम्
 शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
 फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्
 सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणीम्
 सुखदां वरदां मातरम्॥
 कोटिकोटि-कण्ठ-कलकल-निनाद-कराले
 कोटिकोटि-भुजैर्धृत-खरकरवाले
 के बोले मा तुमि अबले
 बहुबल-धारिणीं नमामि तारिणीं □□□
 रिपुदल-वारिणीं मातरम्॥
 तुमि विद्या तुमि धर्म
 तुमि हृदि तुमि मर्म
 त्वं हि प्राणाः शरीरे।
 बाहुते तुमि मा शक्ति
 हृदये तुमि मा भक्ति
 तोमारइ प्रतिमा गड़ि
 मन्दिरे मन्दिरे।
 त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी
 कमला कमल-दल-विहारिणी
 वाणी विद्यादायिनी
 नमामि त्वां
 नमामि कमलां अमलां अतुलां
 सुजलां सुफलां मातरम्
 वन्दे मातरम्॥
 श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
 धरणीं भरणीं मातरम्।
 वन्दे मातरम्॥ □□□

भारत माता की बिन्दी हिन्दी

□ डॉ० हरप्रसार स्थापक 'दिव्य'

हिन्दी भारत माँ की बिन्दी, इसे नई चमकार दो।।टेक।।
 हिन्दी है हृदय की धड़कन, स्पंदन सुनता है संसार।
 कंठहार बन जाय सभी की, मिल जाये जग भर का प्यार।।
 पनप चुकी है हिन्दी अब, इसे तरुणाई के बोल दो।
 रसवंती बन जाय जगत में, ऐसा अमृत घोल दो।।
 हिन्दी है वैज्ञानिक भाषा, दुनिया को ललकार दो।।१।।
 भाषायी विवाद अरे!, संकीर्ण विचारों के घेरे हैं।
 उन्हें मिटाकर ही देशों ने, अपने शुभ दिन फेरे हैं।।
 भरत भूमि में रहने वाले, माता के सब चेरे हैं।
 हिन्दी को अपनाने में, क्यों उठे विवाद घनेरे हैं?।।
 उठो हिन्द के वीर सपूतो, हिन्दी में हुंकार दो।।२।।
 शांति, दया, करुणा, मैत्री के, संदेश घरों में जाते हैं।
 सभी धर्म के लोग यहाँ, हिन्दी की अलख जगाते हैं।।
 'देववाणी' की बिटिया है यह, इसको सदा दुलार दो।
 भारत माँ के वीर सपूतो, हिन्दी को सच्चा प्यार दो।।
 निज कंठहार बना लो इसको, बुलंदी से जयकार दो।।३।।
 सब भाषाओं में वैज्ञानिक, माँ भारती स्वीकारती।
 खुले कंठ अरु कर कमलों से, सदा उतारें आरती।।
 चमक चाँदनी बन जाये, रोशन होगा सारा संसार।
 भारत यदि संकल्पित हो, तो मिल जाये जगती का प्यार।।
 बिन्दी चमके सूरज जैसी, इस वसुधा को उजियार दो।।४।।
 हिन्दी लेखन अरु बोलन में, अन्तर की कोई बात नहीं है।
 विश्व बन्धुत्व भाईचारे में, पड़ता कोई फर्क नहीं है।।
 मातृभूमि के भाई-बहिन, जुट जायें इसे अपनाने में।
 जैसा जोश भरा रहता है, राष्ट्रगान के गाने में।।
 हिन्दी है पहचान हिन्द की, शाश्वत जीवनाधार दो।।५।।
 'जगत्साक्षी' है स्थायी, प्रकाशित भू-नभ मण्डल परिवार।
 हिन्दी की बिन्दी यह चमके तो, ईर्ष्या करना है बेकार।।
 हिन्दी वैज्ञानिक भाषा में, संजीवन सी शक्ति अपार।
 सब हँस बोलें हिन्दी में, दुनिया को नई पहचान दो।।
 जीवट जीवन के हिन्द वीर, हिन्दी अपनाने आह्वान दो।।६।।

□□□

हिन्दु धर्म ग्रंथों का परिचय

□ डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल

हिन्दुओं के अनेक ग्रंथ हैं परन्तु इनमें अपौरुषेय वेद सबके आदि स्रोत और आधार हैं। इन ग्रंथों के मुख्य भाग ये हैं- (१) वेद, (२) वेदाङ्ग, (३) उपवेद, (४) पुराण, और ऐतिहासिक ग्रंथ, (५) स्मृति, (६) दर्शन, (७) निबन्ध, (८) आगम, (९) विविध ग्रंथ।

१. वेद- वेद संहिताएं चार हैं। इनमें से ऋग्वेद में १०५५२, यजुर्वेद में १९७५, अथर्ववेद में ५९७७ और सामवेद में १८७५ मंत्रों सहित चारों वेदों में कुल २०३७९ मंत्र हैं। वेदों के सत्यार्थ को समझने, यज्ञों में उनकी प्रयोग विधि जानने, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति तथा उनकी सुरक्षा के लिए ऋषियों द्वारा रचित वेद सम्बन्धी ग्रंथों के छः भाग ये हैं- ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्रग्रंथ, प्रातिशाख्य और अनुक्रमणी।

(अ) ब्राह्मण ग्रंथ- ये ग्रंथ वेद मंत्रों के अर्थ और उनकी यज्ञों में प्रयोगविधि बताते हैं तथा प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रंथ हैं जैसे ऋग्वेद के ऐतरेय और कोषीतकी अथवा शांखायन, यजुर्वेद के तैत्तिरीय और शतपथ, अथर्ववेद का गोपथ और सामदेव का ताण्ड्य ब्राह्मण मुख्य हैं।

(आ) आरण्यक- ये अरण्य या वन जैसे निर्जन शान्त स्थान में पढ़ने योग्य ब्रह्मविद्या सम्बन्धी ग्रंथ हैं जो कि अधिकांशतः ब्राह्मण ग्रंथों के अंग हैं।

(इ) उपनिषद्- इसका अर्थ है ईश्वर के पास पहुंचाने वाला ग्रंथ। इनमें आध्यात्मिक विद्या और ईश्वर जीव सम्बन्धों का विवेचन किया गया है। वैसे तो २२० उपनिषदों का उल्लेख मिलता है परन्तु इनमें

से जिन मुख्य ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य मिलता है वे हैं- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य और बृहदारण्यक।

(ई) सूत्र ग्रंथ- इनके श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र तीन भाग हैं। इनमें वेदों के कर्मकाण्ड को स्पष्ट किया गया है तथा प्रत्येक वेद के अलग-अलग सूत्र ग्रंथ हैं। इने ऋग्वेद के आश्वलायन, और कौषीतकी, यजुर्वेद के आपस्तम्ब, कात्यायन और बोधायन, अथर्ववेद के बेतान व कौशिक तथा सामवेद के जैमिनीय, खादिर और गौतम मुख्य सूत्र ग्रंथ हैं।

(उ) प्रातिशाख्य- ये वैदिक व्याकरण हैं तथा चारों वेदों के अलग-अलग प्रातिशाख्य हैं। इनमें से कात्यायन का शुल्बसूत्र विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

(ऊ) अनुक्रमणी- ये एक प्रकार के सूची ग्रंथ हैं जिनका उद्देश्य वेदों की मौलिकता, सुरक्षा एवं वेदार्थ विवेचन करना है। इनमें वेद मंत्रों के देवता, ऋषि, छन्द, स्वर आदि की दृष्टि से सूचियां हैं। इनमें से ऋग्वेद को आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सर्वानुक्रमणी, वृहदेवत, ऋगविज्ञान, और ऋक्प्रातिशाख्य और यजुर्वेद की आत्रेयानुक्रमणी चारायणीयानुक्रमणी, कात्यानुक्रमणी और प्रातिशाख्यसूत्र मुख्य हैं।

२. वेदाङ्ग- मानव शरीर के समान वेद के भी छः मुख्य अङ्ग माने गए हैं। तदनुसार वेद की आँख है ज्योतिष, कान हैं-निरुक्त, नाक है शिक्षा, मुख है व्याकरण, हाथ हैं कल्प और छन्द चरण हैं।

(अ) शिक्षा- इन ग्रंथों में वेद मंत्रों के स्वर, अक्षर, मात्रा तथा उच्चारण का विवेचन किया गया है। इनमें ऋग्वेद की पाणिनीय शिक्षा, यजुर्वेद की व्यास एवं याज्ञवल्क्य शिक्षा ग्रंथ, अथर्ववेद की माण्डूकी शिक्षा और सामवेद की गौतमी, लोमशी और नारदीय शिक्षा मुख्य हैं।

(आ) व्याकरण- इसका कार्य मुख्यतया वैदिक भाषा के नियम निश्चित करना है। इन ग्रंथों में पाणिनि व्याकरण पर महर्षि पतञ्जलि का महाभाष्य मुख्य है।

(इ) निरुक्त- ये वेदों की व्याख्या के नियम बतलाने वाले कोश हैं जिनमें यास्काचार्य का निरुक्त मुख्य है।

(ई) छन्द- वैदिक मंत्रों के छन्दों का विवेचन करने वाले अनेक छन्द ग्रंथ हैं।

(उ) कल्प सूत्र- ये यज्ञों की विधि का वर्णन करते हैं।

(ऊ) ज्योतिष- इसका मुख्य प्रयोजन संस्कार और यज्ञों के लिए मुहूर्त बतलाना तथा यज्ञ स्थली मण्डप आदि का माप तथा विज्ञान बतलाना है। इनमें नारद, पराशर, वसिष्ठ आदि ऋषियों के अलावा, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्राह्मणगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथ प्रमुख हैं।

३. उपवेद- प्रत्येक वेद का एक उपवेद है जो कि वेद की परिपूर्णता को समझने में सहायक होता है। ऋग्वेद का उपवेद अथर्ववेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है। प्रत्येक उपवेद पर अनेकों ग्रंथ हैं।

४. पुराण- ये हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास के प्रमुख ग्रंथ हैं। इन्हें १८ पुराणों में बाँटा

गया है। अठारह पुराणों के नाम हैं- ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वराह, वामन, भागवत्, भविष्य, मत्स्य, गरुड, मार्कण्डेय, कूर्म, लिङ्ग, अग्नि, पद्म, स्कन्द, शिव, वायु और ब्रह्मवैवर्त पुराण।

अठारह उपपुराणों के नाम ये हैं- सनत्कुमार, नृसिंह, ब्रह्मनारदीय, दुर्वासा, कपिल, मानव, वरुण, कालिका, साम्ब, सौर, पराशर, आदित्य, वसिष्ठ, भार्गव, देवी, पशुपति, आदि और शिवधर्म।

४. ऐतिहासिक ग्रंथ- इनमें महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण और महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्राचीन मुख्य ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। श्रीमद् भगवत गीता महाभारत के भीष्म पर्व का अंग है।

५. स्मृति- ये हिन्दू धर्म एवं समाज व्यवस्था के विधि विधान, शासन एवं दण्ड व्यवस्था के ग्रंथ हैं जिनकी विभिन्न कालों में ऋषियों ने रचना की है। इनमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों का समुचित विवेचन है। वैसे तो २५० स्मृतियों का उल्लेख मिलता है, मगर आज लगभग १०० स्मृतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से निम्नलिखित बाईस स्मृतियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, कात्यायनस्मृति, हारीतस्मृति, औशतनतीस्मृति, अंगिरास्मृति, यमस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, पराशरस्मृति, व्यासस्मृति, दक्षस्मृति, गौतमस्मृति, वसिष्ठस्मृति, आपस्तम्बस्मृति, संवर्तस्मृति, शंखस्मृति, लिखितस्मृति, देवलस्मृति, शातातपस्मृति और कौस्तुभस्मृति।

६. दर्शन शास्त्र- 'तत्त्व ज्ञान साधक' ग्रंथों

का नाम दर्शन शास्त्र है। इनमें बुद्धि व तर्क के द्वारा किसी विषय का सत्य स्वरूप निर्धारित करने की विधियाँ बताई गई हैं। इन समस्त हिन्दू दर्शनों को वैदिक, बौद्ध और जैन दर्शन, इन तीन भागों में बांटा गया है। छः वैदिक दर्शनों के नाम हैं—कपिल का सांख्य दर्शन, पतञ्जलि का योग दर्शन, गौतम का न्याय दर्शन, कणाद का वैशेषिक दर्शन, जैमिनी का पूर्व मीमांसा और बादरायण का उत्तरमीमांसा या वेदान्त दर्शन।

७. निबन्ध ग्रंथ- ये ग्रंथ स्मृतियों के समान हैं जिनमें विभिन्न धर्माचरणों, विधि विधानों एवं विषयों को विस्तार से सुस्पष्ट किया गया है। इनकी संख्या लगभग पचास है।

८. आगम- वेदों से लेकर निबन्धग्रंथों तक की परम्परा को निगम कहा जाता है और जिन ग्रंथों में इष्टदेव की पूजा उपासना, अर्चना, ध्यान आदि का विवेचन है उन्हें आगम कहते हैं। अतः शैव, शाक्त, वैष्णव एवं जैनियों के अनेक आगम ग्रंथ हैं। संक्षेप में वैष्णवों के पाञ्चरात्र संहिताओं में १३ प्रमुख हैं तथा शैवों और शाक्तों के ६४-६४ प्रामाणिक आगम हैं। विस्तार में और भी ग्रंथ हैं।

ज्ञानेश्वरी एवं तिरुक्कुरल- मराठी भाषा में सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी तथा तमिल भाषा में तमिल सन्त तिरुवल्लुवर कृत तिरुक्कुरल अत्यन्त सरल व प्रेरणादायक धार्मिक कृतियाँ हैं।

ऊपर लिखे मूल ग्रंथों के भारतीय भाषाओं में अनेक भाष्य व टीकाओं के अलावा विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है।

हिन्दूधर्मशास्त्रों का प्रामाणिक आधार ग्रंथ वेद- हिन्दू समाज की अति प्राचीनता तथा विभिन्न

कालों में हुए धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों से प्रभावित चिन्तन ही इस विविधता का मूल कारण है। जटिल और रहस्यमय वेदों से लेकर गीता, रामायण और पुराणों तक की सरल धार्मिक व्याख्या हिन्दू धर्म के लचीलेपन की विशेषता है। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की विशाल धरोहर में व्यापक विविधता होते हुए भी एक मूलभूत, अनवरत समानता, मौलिकता, एकता एवं समन्वयता विद्यमान है जो सुदूर प्रान्तों की विभिन्न भाषाओं, बोलियों व रीति-रिवाजों में भी अपनी मौलिकता को संजोए हुए हैं। यही राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समरसता एवं धार्मिक एकात्मता की सबसे बड़ी कड़ी है जिसका मुख्य आधार वेद हैं। ये ही हिन्दुओं के विभिन्न मतों, दर्शनों, एवं सम्प्रदायों के आदि स्रोत हैं। वेद ही हिन्दू धर्म के आदि, मौलिक और प्रामाणिक धर्म ग्रंथ हैं क्योंकि लाखों वर्षों के बाद में भी इनमें कोई मिलावट व न्यूनता नहीं आई है। कारण कि हमारे ऋषियों ने वेद के प्रत्येक शब्द को तेरह विभिन्न प्रकार से स्मरण कर परम्परागत ढंग से उन्हें अपने मौलिक रूप में सुरक्षित रखा है। इसीलिए सभी धर्म ग्रंथों एवं ऋषियों ने वेदों को ही अन्तिम प्रामाणिक धर्मशास्त्र माना है—देखिए प्रमाण—

१. लोकों के लिए वेद प्रामाणिक हैं (वेदा प्रमाणा लोकानां—महाभा० शां० २७०)
२. मनुष्य वेदों को प्रामाणिक मानकर अपने धर्म का पालन करें। (कुर्वन्ति धर्ममनुजाः श्रुति प्रामाण्य दर्शनात्, (म०भा० शां० २९७.३३)
३. श्रुति प्रामाणिक है (श्रुति प्रामाण्याच्च - न्याय द० ३.१.३२)
४. धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद ही प्रामाणिक हैं

- (धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः
मनु स्मृति २.१३
५. जो धर्मज्ञ हैं उनके लिए वेद ही प्रामाणिक हैं
(धर्मज्ञ समयः प्रमाण वेदाश्च, आप० १.१.१२)
६. वेद धर्म का मूल है ऐसा विद्वान व स्मृति मानती हैं (वेदो धर्ममूलमेतद्विदां च स्मृतिः गौतमधर्मसूत्र)
७. समस्त धर्म का आधार वेद हैं (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, मनु० स्मृति २.८)
८. श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर वेदों को ही प्रामाणिक माना जाए (श्रुति स्मृति विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी-जाबालस्मृति)
९. वेद से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है (नास्ति वेदात्परं शास्त्रं-अत्रि स्मृति)
१०. वेद सर्वकालीन प्रामाणिक सत्य और लक्ष्य ग्रंथ हैं अतः प्राचीन काल से आज तक सभी धर्म शास्त्रों व विद्वानों ने वेदों को ही हिन्दुओं का प्रामाणिक धर्मशास्त्र माना है तथा वेद भाष्य प्राचीन वैदिक परम्परा के ही अनुकूल होना चाहिए। पाश्चात्यों के अनुसार नहीं। इसीलिए वेद सब सत्य विद्याओं का आदि ग्रंथ है।
“वेद का पढ़ना-पढ़ाना परम धर्म है”।

□□□

श्रीरामभद्राचार्यकं पञ्चकम्

□ श्री रामानुग्रह शर्मा (राँची)

(१)

रामभद्रो मुनिर्माननीयः कविः
व्यास देवोऽवतीर्णोऽमृताशुः शशी।
रामनामाननः सन्त सेव्य सुधीः
विष्णु दामोदरो माधवः श्रीहरः॥

(२)

भानुदेवो विभातीश्वरो दीप्तिमान्
राघवेन्द्रो रवीराजते कीर्तिमान्।
वैष्णवानां धुरीणो महारविः
पूज्ये विभागे महाभामणिः॥

(३)

चित्रकूटे पवित्रे प्रसिद्धस्थले
रामभद्रैः पुनीते प्रसिद्धेऽचले।

जीवने मे प्रकाशं गतं साम्प्रतम्
घोर मोहान्धकारे सदा पीडितम्॥

(४)

ज्ञानदो विश्वव्यापी यती मुक्तिदः
प्राणवायुर्महाप्रेरकः सर्वदा।
किं न ध्येयो गुरुर्बन्धनान्मुक्तिदः
विश्वबन्धुः सखा रक्षकस्तारकः॥

(५)

रामभद्रो जनानां हृदिस्थः सदा
प्राणवायुर्महाप्रेरकः सर्वदा।
विश्वबन्धुः सखा रक्षकस्तारकः
किं न ध्येयो गुरुर्बन्धनान्मुक्तिदः॥

□□□

जब हनुमान जी की प्रस्तर-प्रतिमा में कम्पन हुआ

□ साहित्य-वारिधि डॉ० हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

हनुमान जी के स्वरूप-ज्ञान और उनकी भक्ति के लिए 'हनुमानचालीसा' नामक अत्यन्त लोकप्रिय रचना 'बिन्दु से सिन्धु' के समान है। दो सौ वर्षों से अधिक पुरानी 'हनुमत्-पचासा' नामक एक अन्य कृति यद्यपि बहुत कम विख्यात रही है, तथापि वह हनुमान जी की अनूठी आराधना के रूप में एक अमर कृति है। भक्ति-काव्य में यह विशिष्ट गुण बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवि मान की वाणी का प्रसाद है। भूतपूर्व चरखारी राज्य में राजा अमानसिंह के दरबारी कवि मान हनुमान जी के परम भक्त थे। काकनी नामक छोटे से ग्राम के निवासी इस कवि ने गांव की पहाड़ी पर स्थित हनुमान जी की सिद्ध मूर्ति के समक्ष जो पचास कवित्त सुनाए, वे भक्तों के लिए अमूल्य निधि बन गए।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जहाँ आस्था का अवमूल्यन होता जा रहा है, कितने लोग विश्वास करना चाहेंगे कि कालिदास और दण्डी की भांति मान भी केवल साधना के भरोसे ही बहुत बढ़े-चढ़े थे। किसी भी अच्छे साहित्यकार या कलाकार से ईर्ष्या रखनेवाले दस-बीस व्यक्ति प्रत्येक नगर में मिल जायेंगे। प्रसिद्ध है कि मान के राजकीय सम्मान के प्रतिद्वंद्वी एक मैथिल पण्डित ओक्रा को अपने कवित्व का बड़ा गुमान था। दोनों के बीच श्रेष्ठता निर्धारित किए जाने के लिए यह तय पाया गया कि दोनों काकनी के हनुमान जी की मूर्ति के समक्ष अपने-अपने काव्यों का पाठ करें और जिसके पाठ से प्रतिमा में कुछ भी परिवर्तन परिलक्षित होगा, उसी को श्रेष्ठतर स्वीकार किया जायेगा। कहा जाता है कि

प्रथम दिन विशाल जनसमूह के समक्ष ओक्रा जी का पाठ हुआ और दूसरे दिन मान कवि का। ज्यों ही मान ने निम्नलिखित पचासवां कवित्त सुनाया, हनुमान जी की प्रस्तर प्रतिमा में कम्पन उत्पन्न हुआ और उनकी गर्दन भक्त मान की ओर झुकी हुई दिखायी दी। मूर्ति आज भी ज्यों कि त्यों टेढ़ी है और श्रद्धालुओं की सिद्धि-प्रदाता बनी हुई। मान के 'हनुमत्-पचासा' का वह अन्तिम कवित्त इस प्रकार है-

बाचे डेढ़ मासा सोक संकट बिनासा तपै
तप को तमासा बासा मंगल अनन्त को।
विभव बिकासा मन बांछित प्रकासा दसों
दिस सुख सम्पत्ति बिलासा सुर संत को।
महाबीर सासा पूज बीरा ओ बतासा करे
बिपत को ग्रासा तन त्रासा अरि अंत को।
सिख नख खासा रिद्ध सिद्ध को निवासा यह
दास आसा पूरक पचासा हनुमंत को॥

नियमपूर्वक डेढ़ मास तक इस पचासा का पाठ अनेक प्रकार के अभीष्ट फलों को देनेवाला होगा-कवि की यह कामना उसको तो अक्षय यश देने वाली बनी ही, परंतु बीड़ा-बतासे के साथ महावीर की अर्चना का उसने जो कल्याणकारी मार्ग जनता को सुझाया वह भी एक दिव्य संदेश है। कवि का कथन है कि ऋद्धि-सिद्धि मुख्य स्थल नख-शिख ही है। अर्थात् हमारा शरीर ही समृद्धि और सफलता के निवास का मुख्य स्थल है।

श्रीहनुमान जी की स्तुति के पांच सुन्दर कवित्त इस विलक्षण आराधना के परिचयात्मक रूप में यथेष्ट व्याख्यासहित प्रस्तुत हैं-

महाकाव्य महाबल महाबाहु महानख
महानद महामुख महा मजबूत है।
भनै कवि 'मान' महाबीर हनुमान महा-
देवन को देव महाराज रामदूत है।।
पैठ के पाताल कीन्हों प्रभु को सहाय महि
रावन दहायवे को प्रौढर-सपूत है।
डाकिनी को काल, शाकिनी को जीवहारी सदा
काकिनी के गिरि पै बिराजै पौन-पूत है।

मान कवि हनुमान जी के बलशाली रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे शूरवीरों में अग्रणी हैं, देवाधिदेव श्रीराम के दूत हैं और अपने आराध्य की सहायता करते हुए अहिरावण के विरुद्ध उन्होंने अपनी प्रौढ़ सपूती का परिचय दिया। डाकिनी और शाकिनी के प्रबल शत्रु ये हनुमान जी काकिनी के पर्वत पर अचलरूप में आसीन हैं।

बज्र की झिलन भानु मंडली गिलन
रघुराज कपिराज को मिलन मजबूत को।
सिन्धु मग झारबो उजारबो बिपिन लंक
बारबो उबारबो विभीषण के सूत को।
भनै कवि 'मान' ब्रह्म-शक्ति ग्रसन जान
राम भ्रात प्राण दान द्रोणगिरि ले अकूत को।
रंजन धनंजय, सोक गंजन सिया को लखो
भाल खल भंजन, प्रभंजन के पूत को।।

अर्थात् मारुतनंदन इन्द्र के वज्र-प्रहार को सहनेवाले, सूर्यमण्डल को निगलने वाले, श्रीराम-सुग्रीव को मैत्री-सूत्र में बांधने वाले, सिन्धु मार्ग को निष्कण्टक बनाने वाले, लंका एवं अशोकवाटिका को उजाड़नेवाले, विभीषण एवं इन्द्र के सारथि के प्राणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मशक्ति को आत्मसात् करने वाले, विशाल द्रोणाचल को धारण करते हुए लक्ष्मण को प्राणदान देने वाले तथा अर्जुन और सीता

को आनंदमय परंतु दुष्टों का मान-मर्दन करने वाले हैं।

रौद्र रस रेले रन खेले मुख भेजे भार,
असुर उसेले जो उबेले सुर गाढ़ तें।
चपल निसाचर चमून चक चूरे महि,
पूरे लंक भाजन जरूप जाड़ पाढ़ तें।
जानत को डाढ़ें शोक सागर तें काढ़ें सान,
साढ़े गुन बाढ़े खल बाढ़ तें,
परे प्राण पाड़े दल दुष्टन को ढाढ़े धन्य,
पौन पुत्र डाढ़े जे उखाड़े यम दाढ़ तें।।

कवि ने एक-एक कवित्त में हनुमान जी की दृष्टि, नासिका, कपोल, अधर आदि का वर्णन करते हुए उनके हुंकार का विशद वर्णन किया है। उपर्युक्त कवित्त में हनुमान जी की दाढ़ों को कवि ने रणभूमि में रौद्र-रस का संचार करनेवाली बताया है। उनकी चपेट में आने वालों के प्राणों के लाले पड़ जाते हैं। दुष्टों को उनके कर्मों का दण्ड देने वाली पवनपुत्र की दाढ़ें यमराज की दाढ़ों के महत्त्व को उखाड़ फेंकने वाली हैं।

अरुण ज्यों भौम सोम दृग लौं असीम लोम
कोमल ज्यों छेम करे कर सिय कंत के।
महा प्रलयों में मुनि लोमस के लोमन लौं
बैरिन बिलोम अनलोम सुर संत के।
बज्र मुद मोम छबि 'मान' संत सोम जे
अ-सोम ग्रह सोम कर अदिन के अंत के
खलन के खोम जोम होत है अजोम जोम
ज्वालिन के तोम बंदौं रोम हनुमंत के।।

हनुमान जी की रोम-राशि की वंदना करते हुए कवि कहता है कि वह मंगल ग्रह की लालिमा से अनुरंजित है, चन्द्रमा के समान कोमल है तथा श्रीराम के कर-कमलों के समान संतापहारी है। लोमश मुनि

की भाँति वह महाप्रलय में भी नष्ट नहीं होती। शत्रुओं के लिए प्रतिकूल तथा देवों एवं संतों के अनुकूल यह रोमावली दुष्टों के उत्साह को तिरोहित कर देने वाली अग्नि है। जिसके समक्ष वज्र और मुद्गर भी मोम-तुल्य प्रतीत होते हैं।

उनके संपूर्ण शरीर का वर्णन करने वाला कवित देखिए-

ज्वाल सों जले न जलजोर सों जले ना अस्त्र,
अरि को धले न जो चले ना जिमी जंग को।
काल दण्ड ओट सत कोट की न लागे चोट,
सात कोटि महामंत्र मंत्रित अभंग की।
कहे कवि 'मान' मघवान मिल गीरवान,
दीनों बरदान मान पान के प्रसंग की।
जीतमोह माया मार कीन्हो छार छाया राम,
जाया कर दाया धन्य काया बजरंग की॥

सूर्य को एक फल समझकर निगल जाने वाले हनुमान जी की ठोड़ी पर इन्द्र ने वज्र-प्रहार किया था। पवनदेव ने क्रुद्ध होकर संपूर्ण प्राणियों का श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध कर दिया। तब अग्नि, वरुण, विश्वकर्मा, यम, इन्द्र, शिव आदि देवताओं ने हनुमान जी को वरदान दिया कि उनका कभी भी कोई अनिष्ट न होगा।

कवि मान का कथन है कि जिन हनुमान जी ने मोह-माया एवं मार (कामदेव) को निर्जीव कर दिया है और जो श्रीराम के कर-कमलों से पोषित हैं, उनकी दिव्य देह का वर्णन कैसे संभव है। धन्य हैं वे बलशाली हनुमान, जिन पर उनके स्वामी सदैव सानुकूल हैं। साधारण पाठकों के लिए हिन्दी-भाषा का यह काव्य विलक्षण वरदाता है-चाहिए केवल तन्मयतापूर्ण निष्ठा।

□□□

तू राम शरण में जा (नैमिष तीर्थ में आशु रचना)

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा।
धन सम्पत्ति सुख वैभव सारा यह सब झूठी माया।
इसके चक्कर में पड़ मूर्ख नरतन वृथा गँवाया॥
बड़े भाग्य ईश्वर की करुणा मानुष देह मिला है।
साधन करले मूढ चूक मत शतदल कमल खिला है॥
गोविन्द शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा। तू रामशरण.....
झूठे हैं सम्बन्ध जगत के कोई नहीं है तेरा।
अब भी जान देख ले मूर्ख आया सुखद सवेरा॥
तू राम नाम को गा मत कर तू मेरा मेरा। तू रामशरण.....
राम मन्त्र का जप कर मूर्ख नर तन सफल बना ले।
'रामभद्र आचारज' प्रभु में चंचल मन को लगा ले॥
तू राम में मन को लगा मत कर तू मेरा मेरा।
तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा॥

प्रस्तुति - कु० गार्गी शर्मा

शरणागति में सभी का अधिकार है

□ परमवीतराग सन्त स्वामी रामसुखदास जी महाराज

विचार करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आज के मनुष्य का जीवन स्वकीय शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के परित्याग के कारण विलासयुक्त होने से अत्यधिक खर्चीला हो गया है। जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओं का मूल्य अधिक बढ़ गया है। व्यापार तथा नौकरी आदि के द्वारा उपार्जन बहुत कम होता है। इन कारणों से मनुष्यों को परमार्थ-साधन के लिये समय का मिलना बहुत कठिन हो रहा है और साथ-ही-साथ केवल भौतिक उद्देश्य हो जाने के कारण जीवन भी अनेक चिन्ताओं से घिरकर दुःखमय हो गया है। ऐसी अवस्था में कृपालु ऋषि-मुनि एवं संत-महात्माओं द्वारा त्रिताप-संतप्त प्राणियों को शीतलता तथा शान्ति की प्राप्ति कराने के लिये ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, हठयोग, अष्टाङ्गयोग, लययोग, मन्त्रयोग और राजयोग आदि अनेक साधन कहे गये हैं और वे सभी साधन वास्तव में यथाधिकार मनुष्यों को परमात्मा की प्राप्ति कराकर परम शान्ति प्रदान करने वाले हैं। परन्तु इस समय कलि-मलग्रसित विषय-वारि-मनोमीन प्राणियों के लिए-जो अल्प आयु, अल्प शक्ति तथा अल्प बुद्धि वाले हैं- परम शान्ति तथा परमानन्दप्राप्ति का अत्यन्त सुलभ तथा महत्त्वपूर्ण साधन एकमात्र भक्ति ही है। उस भक्ति का स्वरूप प्रीतिपूर्वक भगवान् का स्मरण ही है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में भक्ति के लक्षण बतलाते हुए भगवान् श्रीकपिलदेव जी अपनी माता से कहते हैं-

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥
(३।२९।११-१४)

अर्थात् जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्डरूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मनकी गति का तैलधारावत् अविच्छिन्नरूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना-यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त, दिये जाने पर भी, मेरे भजन को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्षतक नहीं लेते। भगवत्सेवा के लिये मुक्ति का भी तिरस्कार करने वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघकर मेरे भाव को-मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार श्री मधुसूदनाचार्य ने भी भक्तिरसायन में लिखा है-

द्रुतस्य भगवद्भर्माद्भारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

अर्थात् भागवत-धर्मों का सेवन करने से द्रवित हुए चित्त की भगवान् सर्वेश्वर के प्रति जो तैलधारावत् अविच्छिन्न वृत्ति है, उसी को भक्ति कहते हैं।

उपर्युक्त लक्षणों से सिद्ध होता है कि अनन्य भावयुक्त भगवत्स्मृति ही भगवद्भक्ति है।

भगवद्वचनामृतस्वरूप परम गोपनीय एवं

रहस्यपूर्ण ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन द्वारा किये हुए सात प्रश्नों में से अन्तिम प्रश्न यह है कि 'हे भगवन् ! आप अन्त समय में जानने में कैसे आते हैं? अर्थात् मृत्युकाल में आप प्राणियों द्वारा कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं?' इसका उत्तर देते हुए उसी अध्याय के पाँचवे श्लोक में कहा गया है कि 'अन्तकाल में भी जो केवल मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होता है। अतः हे अर्जुन ! तू सभी समयों में मेरा ही स्मरण कर तथा युद्ध (कर्तव्य-कर्म) भी कर। इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि को लगाये हुए तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा (गीता ८।७)।' ऐसे ही सगुण-निराकार परमात्मस्वरूप की प्राप्ति के विषय में भगवान् कहते हैं-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

(गीता ८।८)

अर्थात् हे पृथानन्दन ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, अन्य ओर न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ प्राणी परमप्रकाशस्वरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है। फिर आगे के श्लोक में भगवान् कहते हैं-

कविं पुराणमनुशासितार-

मणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-

मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

(गीता ८।९)

अर्थात् जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियामक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन, प्रकाशस्वरूप एवं अविद्या से अति परे शुद्ध

सच्चिदानन्दधन परमात्मा को स्मरण करता है, वह परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

इसी अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में निर्गुण-निराकार परमात्मस्वरूप की प्राप्ति के उस परब्रह्म प्रशंसा तथा बतलाने की प्रतिज्ञा करके बारहवें श्लोक में उस परमात्मा की प्राप्ति की विधि बतलाते हुए आगे के श्लोक में कहते हैं-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥

(गीता ८।१३)

अर्थात् 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और (उसके अर्थस्वरूप) मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

इसीप्रकार भगवान् ने सगुण-स्वरूप तथा निर्गुण-स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय बतलाये, परंतु दोनों साधनों में योग के अभ्यास की अपेक्षा होने के कारण साधन में कठिनता है, अतः अब आगे अपनी प्राप्ति की सुलभता बताते हुए भगवान् अपने प्रिय सखा कुन्तीनन्दन अर्जुन के प्रति कहते हैं-

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गीता ८।१४)

'हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो मनुष्य नित्य-निरन्तर अनन्य चित्त से मुझ परमेश्वर का स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें लगे हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ- वह सुगमतापूर्वक मुझे पा सकता है।'

अब आप देखेंगे कि गीता भर में 'सुलभ' पद केवल इसी स्थान पर इसी श्लोक में आया है। इस सौलभ्य का एक मात्र कारण अनन्य भाव से नित्य-निरन्तर भगवान् का स्मरण ही है। आप कह सकते हैं कि जो प्रभु अपने स्मरणमात्र से इतने सुलभ हैं,

उनके स्मरण बिना उनके स्वरूप-ज्ञान को क्योंकर किया जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि आजतक आपने भगवत्स्वरूप के सम्बन्ध में जैसा कुछ शास्त्रों में पढ़ा, सुना और समझा है, तदनुरूप ही उस भगवत्स्वरूप में अटल श्रद्धा रखते हुए भगवान् के शरण होकर उनके महामहिमशाली परमपावन नाम के जप में तथा उनके मङ्गलमय दिव्य स्वरूप के चिन्तन में आपको तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिए और यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि उनके स्वरूपविषयक हमारी जानकारी में जो कुछ भी त्रुटि है, उसे वे करुणामय परमहितैषी प्रभु अवश्य ही अपना सम्यग्ज्ञान देकर पूर्ण कर देंगे, जैसा कि भगवान् ने स्वयं गीता जी में कहा है-

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(१०।११)

‘हे पृथापुत्र! उनके ऊपर अनुकम्पा करने के लिये उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।’

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भगवान् का भजन करने से वे परमप्रभु हमारे योग-क्षेम अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति तथा प्राप्त की रक्षा स्वयं करते हैं।

भजन उसी को कहते हैं, जिसमें भगवान् का सेवन हो तथा सेवन भी वही श्रेष्ठ है, जो प्रेमपूर्वक मन से किया जाय। मन से प्रभु का सेवन तभी समुचित रूप से प्रेमपूर्वक होना सम्भव है, जब हमारा उनके साथ घनिष्ठ अपनापन हो और प्रभु से हमारा अपनापन तभी हो सकता है, जब संसार के अन्य पदार्थों से हमारा सम्बन्ध और अपनापन न हो।

वास्तव में विचार करके देखें तो यहाँ प्रभु के सिवा अन्य कोई अपना है भी नहीं; क्योंकि प्रभु के

अतिरिक्त अन्य जितनी भी प्राकृत वस्तुएँ हमारे देखने, सुनने एवं समझने में आती हैं, वे सभी निरन्तर हमारा परित्याग करती जा रही हैं। अर्थात् नष्ट होती जा रही हैं।

इसीलिये संत कबीर जी महाराज कहते हैं-

दिन दिन छाँड्या जात है, तासों किया सनेह।

कह कबीर डहक्या बहुत गुणमय गंदी देह॥

अतः अन्य किसी को भी अपना न समझकर केवल प्रभु का प्रेमपूर्वक अनन्य भाव से स्मरण करना ही उनकी प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण तथा सुलभ साधन है।

इस अनन्य भाव को प्राप्त करने के लिये यह समझने की परम आवश्यकता है कि यह जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति के मध्य में है और जब तक इसकी उन्मुखता प्रकृति के कार्यस्वरूप बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, शरीर तथा तत्सम्बन्धी धन, जन आदि की ओर रहती है, तब तक यह प्राणी अन्य का आश्रय छोड़कर केवल परमात्मा का आश्रय नहीं ले सकता। अतः मेरा कोई नहीं है तथा मैं सेवा करने के लिये समस्त संसार का होते हुए भी वास्तव में एक परमात्मा के सिवा अन्य किसी का नहीं हूँ- इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही प्राणी को अनन्यचित्त वाला बनाने में परम समर्थ है। इस प्रकार ‘चेतसा नान्यगामिना’ (८।८); ‘अनन्येनैव योगेन’ (१२।६), ‘मां च योऽव्यभिचारेण’ (१४।२६); ‘अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्’ (१।२२), ‘मच्चित्ताः’ (१०।९), ‘मन्मना भव’ (१।३४); (१८।६५); ‘मच्चित्तः सततं भव’ (१८।५७); ‘मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि’ (१८।५८), ‘मय्येव मन आधत्स्व’ (१२।८) तथा ‘मय्यर्पितमनोबुद्धिः’ (८।७) - आदि-आदि महत्त्वपूर्ण वाक्यों द्वारा परमात्मा की प्राप्ति रूप फल बतलाकर अनन्यभाव

से भगवान् के चिन्तन-भजन की अत्यधिक महिमा गायी गयी है, अस्तु जिसकी धारणा में श्री भगवान् के सिवा अन्य किसी के प्रति महत्त्वबुद्धि नहीं है, वही अनन्यचित्तवाला अर्थात् अनन्य भाव से स्मरण करने वाला है। अब रहा 'सततम्' पद, सो निरन्तर चिन्तन तो प्रभु के साथ अखण्ड नित्य सम्बन्ध का ज्ञान होने से ही हो सकता है।

इस पर कबीरदास जी की निम्नांकित उक्ति पर ध्यान दें। वे कहते हैं-

जहँ जहँ चालूँ करूँ परिक्रमा
जो कुछ करूँ सो पूजा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत
जानूँ देव न दूजा॥

इस प्रकार उस नित्ययुक्त योगी के लिये भगवान् स्वतः ही सुलभ हैं। दुर्लभता तो हमने भगवान् के अतिरिक्त अन्य सदा न रहने वाली अस्थायी वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़कर पैदा कर ली है। इसके दूर होते ही भगवान् के साथ तो हमारा नित्य-निरन्तर अखण्ड सम्बन्ध स्वतः सिद्ध है ही; अतः हमें अपना सम्बन्ध अन्य किसी से न जोड़ना चाहिये, जो प्राणिमात्र के परम सुहृद् एवं अकारण कारुणिक हैं तथा उन्हीं से ममता करनी चाहिये। फिर तो वे दयामय श्रीहरि हमें आप ही अपना लेंगे, जैसा कि उन्होंने अपने परम प्रिय सखा अर्जुन को अपनाते हुए कहा था-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८।६६)

‘(हे अर्जुन!) सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा; मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।’

यह नियम है कि स्वरचित वस्तु चाहे कैसी ही क्यों न हो, हमको प्रिय लगती ही है। ऐसे ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रभु का रचा हुआ तथा अपना होने के नाते स्वाभाविक ही उन्हें प्रिय है ही। यथा-

अखिल बिश्व यह मोर उपाया।

सब पर मोहि बराबरि दाया॥

फिर उसके लिये तो कहना ही क्या है, जो सब ओर से मुख मोड़कर एकमात्र उन प्रभु का हो जाता है। वह तो उन्हें परम प्रिय है ही। यथा-

तिन्ह महुँ जो परिहरि मद माया।
भजै मोहि मन बच अरु काया।
पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

इसी प्रकार मानस में सुतीक्ष्ण जी भी कहते हैं-

एक बानि करुनानिधान की।

सो प्रिय जाके गति न आन की॥

अतः जिसको स्वयं भगवान् अपनी ओर से प्रिय मानें, उसे भगवान् सुलभ हो जायँ-इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता; जैसा कि श्रीभगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुख से अर्जुन के प्रति कहा है-

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२।६-७)

‘जो मेरे ही परायण रहने वाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे पार्थ! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।’

□□□

भगवद्भक्त श्रीरैदास जी

सदाचार श्रुति सास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्यो।
नीर-खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धार्यो।।
भगवत कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।
राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई।।
बरनाश्रम अभिमान तजि पदरज बंदहिं जास की।
संदेह ग्रंथि खण्डन निपुन बानि बिमल रैदास की।।

- भक्तमाल

भगवान् को अपना सर्वस्व मानने और जानने वाले व्यक्ति के सौभाग्य का वर्णन नहीं हो सकता है। भगवान् के भक्त अच्युत गोत्रीय होते हैं, उनकी चरण-रज-वन्दना के लिये ऋद्धि-सिद्धि प्रतीक्षा किया करती हैं। सन्त रैदास भगवान् के परम भक्त थे, उनकी वाणी ने भागवती मर्यादा का संरक्षण कर मानवता में आध्यात्मिक समता-एकता की भावना स्थापित की। वे सन्त कबीर के अग्रज थे, भगवान् की कृपा ने उन्हें उच्च-से-उच्च पद प्रदान किया। रैदास को प्रभु की भक्ति ने नीच से ऊँच कर दिया। आचार्य रामानन्द के बारह प्रधान शिष्यों में उनकी गणना होती है। सन्त रैदास ने यवन-आक्रमण से त्रस्त भारतीय चेतना को सामाजिक क्रान्ति से समुत्तेजित कर सन्त मत की प्राण-प्रतिष्ठा की। भक्तिप्रधान हृदय में निर्गुण ज्ञानराशि की अलौकिक दीपशिखा प्रज्ज्वलित कर, अज्ञान-अन्धकार का नाश कर रामानन्द स्वामी के प्रधान शिष्य रैदास और कबीर ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अपने सन्त मत का मूलाधार स्वीकार किया।

सन्त रैदास मध्यकालीन भारत की बहुत बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थे। विदेशी शासक की धर्मान्धता से उन्होंने भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक धारा का संरक्षण किया। विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के अधिकांश भाग को उन्होंने अपनी साधना से धन्य किया था। उन्होंने राजनैतिक निराशा में ईश्वर-विश्वास की परिपुष्टि की। परमात्मा की भक्ति

से जन-कल्याण की साधना की। 'सन्तन में रैदास सन्त हैं'-कबीर की वाणी नितान्त सच है।

सन्त रैदास का जन्म काशी में हुआ था। वे चमार कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम रघू था और माता का नाम घुरबिनिया था। दोनों के संस्कार बड़े शुभ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, इसलिये रैदास को उत्पन्न करने का श्रेय उन्हीं दोनों को मिल सका। शिशु रैदास ने जन्म लेते ही माता का दूध पीना बन्द कर दिया। लोग आश्चर्य में पड़ गये। स्वामी रामानन्द रघू के घर आये। उन्होंने बालक को देखा, दूध पीने का आदेश दिया। ऐसा कहा जाता है कि पहले जन्म में भी रैदास रामानन्द के शिष्य थे, ब्राह्मण थे, गुरु की सेवा में कुछ भूल हो जाने से उन्हें जन्म लेना पड़ा। रामानन्द स्वामी ने भागवत पुत्र उत्पन्न होने के कारण रघू दम्पति की सराहना की, उनके पवित्र सौभाग्य का बखान किया, अपने मठ में चले आये।

रैदास का पालन-पोषण बड़ी सावधानी से होने लगा। उनमें दैवी गुण अपने आप विकसित होने लगे। बाल्यकाल से ही वे साधु-सन्तों के प्रति आकृष्ट होने लगे, किसी सन्त के आगमन की बात सुनकर वे आनन्द में नाच उठते थे। सन्तों की सेवा को परम सौभाग्य मानते थे। माता-पिता के आज्ञा-पालन और प्रसन्नता-वर्द्धन में वे किसी प्रकार की कमी नहीं आने देते थे। उनकी रुचि देखकर माता-पिता को चिन्ता होने लगी कि कहीं रैदास बाल्यावस्था में घर त्याग कर संन्यास न ले लें। उन्होंने रैदास को विवाह-बन्धन में जकड़ने का निश्चय कर लिया।

रैदास का काम जूते सीना और भजन करना था। वे जूता सीते जाते थे और मस्ती से गाते रहते थे कि हे जीवात्मा! यदि तुम गोपाल का गुण नहीं गाओगे तो तुमको वास्तविक सुख कभी नहीं मिलेगा। हरि की शरण आने पर सत्यज्ञान का बोध होगा। जो राम के रंग में रंग जाता है उसे दूसरा रंग अच्छा ही नहीं

लगता है। वे जो कुछ भी जूते सीं कर कमाते थे उसमें से अधिकांश साधु-सन्तों की सेवा में लगा देते थे। सन्त रैदास को यह विश्वास हो गया था कि हरि को छोड़कर जो दूसरे की आशा करता है वह निस्सन्देह यम के राज्य में जाता है। रात-दिन ईश्वर की कृपा की अनुभूति करना ही उसका जीवन बन गया था। वे अपने चंचल मन को भगवान् के अचल चरण में बाँधकर अभय हो गये थे। यौवन के प्रथम कक्ष में प्रवेश करते ही रैदास का विवाह कर दिया गया। उनकी स्त्री परम सती और साध्वी थी, पति की प्रत्येक रुचि की पूर्ति में ही उसे अपने दाम्पत्य की पूरी तृप्तिका अनुभव होता था। भगवान् के भजन में लगे पति की प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखना ही उसका पवित्र नित्य कर्म बन गया था इसका परिणाम यह हुआ कि भगवद्भक्ति के मार्ग में विवाह सहायक सिद्ध हुआ, गृहस्थाश्रम रैदास दम्पति के लिये बन्धन न बना सका। दोनों अपने कर्तव्य-पालन में सावधान थे। रैदास के माता-पिता बहुत प्रसन्न थे। घर में सुख-सम्पत्ति की कमी नहीं थी पर सन्तों की सेवा में अधिक धन रैदास द्वारा व्यय होते देखकर उनके माता-पिता चिढ़ गये। यद्यपि रैदास गृहस्थी में अनासक्त थे, जल में कमल की तरह रहते थे तो भी उनके माता-पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी कि वे मेहनत से पैसा पैदा करें और रैदास उसे घर बैठे साधु-सन्त की सेवा में उड़ा दिया करें। उन्होंने रैदास दम्पती को घर से बाहर निकाल दिया, अलग कर दिया। रैदास अपने घर के पीछे ही एक वृक्ष के नीचे झोंपड़ी डालकर अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। उन्होंने पिता और माता का तनिक भी विरोध नहीं किया। हरि-भजन में लग गये।

धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक संत-मण्डली में बढ़ने लगी। वे पतित पावन हरि की भक्ति करने लगे। वे एकान्त में बैठकर अपनी रसना को सम्बोधित कर कहा करते थे कि हे रसना, तुम राम-नाम का जप करो, इससे यम के बन्धन से निस्सन्देह

मुक्ति मिलेगी। वे रुपये-पैसे के अभाव की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे। सन्त रैदास परमात्मा के पूर्ण शरणागत हो गये। उन्होंने प्रभु के पादपद्मों से चिर-सम्बन्ध जोड़ लिया। उनके निवासस्थान पर संतों का समागम होने लगा। कबीर आदि उनके बड़े प्रशंसक थे। स्वामी रामानन्द जी के शिष्यों में उनके लिये विशेष आदर का भाव था, श्रद्धा और भक्ति थी। सन्त रैदास की साधना पर सन्त गनी मासूर की वाणी का भी प्रभाव था। वे ऐसे नगर के अधिवासी हो गये जिसमें चिन्ता का नाम ही नहीं था। उनकी उक्ति है—
बेगमपुर शहर का नाम, फिकर अंदेस नाहिं तेहिं ग्राम।
कह 'रैदास' खलास चमारा, जो उस शहर सो मीत हमारा॥

वे निश्चित होकर संतो के संग में रहने को धन्य जीवन समझते थे। यथाशक्ति अपने आराध्य निर्गुण राम की पूजा में व्यस्त रहते थे, कहा करते थे कि प्रभु, आपकी पूजा किस प्रकार करूँ, अनूप फल-फूल नहीं मिलते हैं, गाय के बछड़े ने दूध जूटा कर दिया है, ऐसी स्थिति में मन ही आपकी पूजा के लिये धूप-दीप है। वे सदा रामरस की मादकता में मत्त रहते थे। उनका विश्वास था कि उनके राम उन्हें भवसागर से अवश्य पार उतार देंगे।

रैदास को माता पिता से एक कौड़ी भी नहीं मिलती थी। जो कुछ दिन भर में कमा लेते थे उसी से संतोष करते थे। वैष्णवों और सन्तों को बिना मूल्य लिये ही जूते पहना दिया करते थे। कभी-कभी रात में फाका करना पड़ता था। एक छोटी-सी झोपड़ी में ही उनकी सम्पत्ति थी, उसमें भगवान् की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी, अपने आप तो वे पेड़ के नीचे पत्नी के साथ रहते थे।

एक दिन वे पेड़ के नीचे बैठकर जूते सिल रहे थे। सत्संग हो रहा था। बहुत से सन्त एकत्र थे। सन्त रैदास ने साधुवेष में अपरिचित व्यक्ति को आते देखा उन्होंने अतिथि की चरणधूलि मस्तकपर चढ़ा ली। भोजन कराया, यथाशक्ति सेवा की। अतिथि ने चलते समय उन्हें पारसमणि देना चाहा पर सन्त रैदास ने

उसके प्रति तनिक भी उत्सुकता न दिखायी, लोहे को सोना बनाकर प्रभावित करना चाहा पर रैदास का परम धन तो राम-नाम था। वे पारस रखना नहीं चाहते थे, अतिथि ने पारस झोपड़ी में खोंस दिया, कहा कि यदि आवश्यकता हो तो इसका उपयोग कर लीजियेगा। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति चाहने वाले रैदास का मन पारस में नहीं उलझ सका। उनके नयन तो सदा प्रभु को ही निहारा करते थे, भयानक दुख आने पर वे हरिनाम का स्मरण करते थे, पारस का उन्हें सपने में भी ध्यान न रहा। कुछ दिनों के बाद साधुवेष वाले अतिथि ने आकर उनसे पारस के सम्बन्ध में बात की। रैदास ने कहा कि मुझे तो इतना भी ध्यान न था कि झोपड़ी में पारस है, अच्छा हुआ, आप आ गये। उसे ले जाइये। अतिथि ने पारस लेकर बात-की-बात में अपनी राह पकड़ी, रैदास को विस्मय हुआ कि वह कहीं चला गया। उन्हें क्या पता था कि स्वयं मायापति भगवान् ही उनकी परख करने चल पड़े थे पर लाभ की बात यह थी कि उनकी माया पराजित हो गयी और सन्त रैदास ने अपने उपास्य देव का दर्शन कर लिया।

परमात्मा की लीला विचित्र है, वे अपने भक्तों और सेवकों की रक्षा में विशेष तत्पर रहते हैं, उन्हें इस तत्परता में आनन्द मिलता है। नित्य प्रातःकाल पूजा की पिटारी में उन्हें पाँच स्वर्ण मुद्रायें मिलने लगीं। रैदास ने आत्मनिवेदन की भाषा में कहा कि प्रभु अपनी माया से मेरी रक्षा कीजिये; मैं तो केवल आपके नाम का बंजारा हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए। भगवान् ने स्वप्न में आदेश दिया कि मैं तुम्हारे निर्मल हृदय की बात जानता हूँ, मुझे ज्ञात है कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिए पर मेरी रीझ और प्रसन्नता इसी में है। सन्त रैदास ने प्रभु से प्राप्त धन का सदुपयोग मन्दिर-निर्माण में किया, मन्दिर में भगवान् की पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त किया गया। सन्त रैदास मन्दिर के शिखर और ध्वजा का दर्शन पाकर नित्य प्रति अपने आपको धन्य मानने लगे।

एक बार एक धनी व्यक्ति उनके सत्संग में आये। सत्संग समाप्त होने पर सन्तों ने भगवान् का चरणामृत-पान किया। धनी व्यक्ति ने चरणामृत की उपेक्षा कर दी। चरणामृत उन्होंने हाथ में लिया अवश्य पर चमार के घर का जल न पीना पड़े- इस दृष्टि से लोगों की आँख बचाकर चरणामृत फेंक दिया, उसकी कुछ बूँदें कपड़ों पर पड़ी। घर आकर धनी व्यक्ति ने स्नान किया, नये कपड़े पहने और जिन कपड़ों पर चरणामृत पड़ा था उनको भंगी को सौंप दिया। भंगी ने कपड़े पहने, उसका शरीर नित्यप्रति दिव्य होने लगा और धनी व्यक्ति कोढ़ का शिकार हुआ। वे रैदास के निवासस्थान पर कोढ़ ठीक करने की चिन्ता में चरणामृत लेने आये, मन में श्रद्धा और आदर की कमी थी। सन्त रैदास ने कहा कि अब जो चरणामृत मिलेगा वह तो निरा-पानी होगा। धनी व्यक्ति को अपनी करनी पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और क्षमा माँगी। सन्त रैदास की कृपा से तथा सत्संग की महिमा से कोढ़ ठीक हो गया।

रैदास की वाणी का प्रभाव राजरानी मीराबाई पर विशेष रूप से पड़ा था। मीरा ने उनको अपना गुरु स्वीकार किया है, उनके पदों में सन्त रैदास की महिमा का वर्णन मिलता है। राणा सांगा के राजमहल को अपनी उपस्थिति से रैदास ने ही पवित्र किया था। रैदास की आयु बड़ी थी, उनके सामने कबीर की इहलीला समाप्त हुई थी। यह निश्चित बात है कि राणा सांगा की पुत्रवधू मीरा को इन्होंने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। चित्तौड़ की झाली रानी भी उनसे प्रभावित थी। काशी यात्रा के समय झाली रानी ने उनको चित्तौड़ आने का निमन्त्रण दिया था। वे चित्तौड़ आये थे। चित्तौड़ में रैदास ने अनेक चमत्कार दिखाये थे। मीरा ने अपने एक पद में 'गुरु रैदास मिले मोहि पूरे' कहकर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है।

रैदास ने कठवत के जल में गंगा का दर्शन किया। एक ब्राह्मण किसी की ओर से गंगा जी की पूजा करने नित्य जाया करता था। एक दिन रैदास ने उसे बिना

मूल्य लिये जूते पहना दिये और निवेदन किया कि भगवती भागीरथी को मेरी ओर से एक सुपारी अर्पित कीजियेगा। उन्होंने सुपारी दी। ब्राह्मण ने गंगा की यथाविधि पूजा की और चलते समय उपेक्षापूर्वक उसने रैदास की सुपारी दूर ही से गंगा जल में फेंक दी पर वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया कि गंगा जी ने हाथ बढ़ाकर सुपारी ली। वह संत रैदास की सराहना करने लगा कि उनकी कृपा से गंगाजी के दर्शन हुए। इस बात की प्रसिद्धि समस्त काशी में हो गयी पर गंगाजी ने रैदास पर साक्षात् कृपा की। सत्संग हो रहा था, रैदास को घेरकर सन्त मण्डली बैठी हुई थी, सामने कठवत में जल रखा हुआ था। रैदास और अन्य सन्तों ने देखा कि स्वयं गंगा जी कठवत के जल में प्रकट होकर कंकण दे रही हैं। रैदास ने गंगाजी को प्रणाम किया और उनकी कृपा से प्रतीकरूप में दिव्य कंकण स्वीकार कर लिया।

रैदास केवल उच्च कोटि के सन्त ही नहीं महान्

कवि भी थे। उन्होंने भगवान् के निरञ्जन, अलख और निर्गुण तत्व का वर्णन किया। उनकी सन्त-वाणी ने आध्यात्मिक और बौद्धिक क्रान्ति के साथ-ही-साथ सामाजिक क्रान्ति भी की। उन्होंने अन्तःस्थ राम को ही परम ज्योति के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा है कि मैं तो सर्वथा अपूज्य था, हरि की कृपा से मेरे जैसे अधम भी पूज्य हो गये। उन्होंने निर्गुण वस्तु तत्व का अमित लौकिक निरूपण किया है। उनका सिद्धान्त था कि अच्छी करनी से भगवान् की भक्ति मिलती है और भक्ति से मुनष्य भवसागर से पार उतर जाता है। सन्त रैदास रसिक कवि और राजयोगी थे। उनकी उक्ति है-

नरपति एक सेज सुख सूता सपने भयो भिखारी।

आछत राज बहुत दुख पायो सो गति भयी हमारी।।

वे संस्कारी सन्त थे। लगभग सवा सौ साल की आयु में वे ब्रह्म लीन हुए।

प्रस्तुति-श्रीमती सरिता त्रिपाठी (मुरादनगर)

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम		
□ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी		
दिनाङ्क	विषय	आयोजक तथा स्थान
17 दिसम्बर 2009 से 25 दिसम्बर 2009 तक	श्रीरामकथा	आट्रम लाईन किंग्सवे कैम्प दिल्ली-९ पुरुषार्थी हरि मंदिर निर्माण समिति दिल्ली।
27 दिसम्बर 2009 से 4 जनवरी 2010 तक	श्रीरामकथा	महान्तश्री 1008 श्रीनारायण देवाचार्य जी महाराज ब्रह्मर्षि श्री डाकोरधाम (गुजरात)
6 जनवरी 2010 से 14 जनवरी 2010 तक	श्रीमद्वाल्मीकि रामायण कथा एवं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की षष्टिपूर्ति-जन्म महोत्सव	श्रीराघव परिवार स्थान-श्रीरामचरित मानस मन्दिर आमोदवन, चित्रकूट
17 जनवरी 2010 से 25 जनवरी 2010 तक	श्रीरामकथा	श्री सर्वेश्वर ब्रह्मचारी माघमेला क्षेत्र दण्डी बाबा श्रीरामलोचनस्वरूप ब्रह्मचारी जी का बाड़ा प्रयाग (उ०प्र०)

कृपया किसी भी कार्यक्रम में जाने से पूर्व परमपूज्या बुआ जी से सम्पर्क अवश्य करके जायें। कार्यक्रम में परिवर्तन भी हो सकता है।

बिसरे न छन भर मोहे

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

बिसरे न छन भर मोहे,
अवध की गलियाँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर मोहे सुहाए हे रघुनन्दन बबुआ।।
ऊँची-ऊँची अटा चढ़ि भामिनी सुहागिनि राघव,
भामिनी सुहागिनि हे रघुनन्दन बबुआ।
रउरे गुन गाई न अघाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर
कौसिलाकुमार जहाँ धुरिया में खेलैं राघव,
धुरिया में खेलैं हे रघुनन्दन बबुआ।
मुखवा से जूठन गिराएँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर

दूधभात खात खात अँगना में भागैं राघव,
अँगना से भागैं हे रघुनन्दन बबुआ।
मुखवा में भात लपटाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर....
कौसिला सुकृत लखि तरसैं इन्द्रानी राघव,
तरसैं इन्द्रानी हे रघुनन्दन बबुआ।
फूल बरसि सुरपति हूँ सिहाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर....
'गिरिधर' माँगैं बर जौन जोनि जन्मउँ राघव,
जौन जोनि जन्मउँ हे रघुनन्दन बबुआ।
रामभद्राचार्य ही कहाऊँ हे रघुनन्दन बबुआ।।
सरजू के तीर....

□□□

हे देवगुरु हे जगद्गुरु.....

□ श्री जगदीश प्रसाद शर्मा (बभनान)

सन्त भगवन्त आपके चरणों में शत शत प्रणाम।
परमानन्द प्राप्त होता है लेकर श्रीराघव का नाम।।
आपश्री इस कलियुग में आये बनकर शुकाचार्य अवतार।
दिव्य कथाएँ सुना सुना करते हम जीवों का उद्धार।।
कैसा भी कोई प्राणी हो अधम और अज्ञानी।
दर्शन और कथाएँ सुनकर हो जाता है ज्ञानी।
दिव्य ज्योति है प्राप्त आपको मन की बात जान लेते हैं।
श्रीचरणों में आये जन को आप सँभाल लेते हैं।।
वाणी में ऐसा जादू है जैसे कान्हा की बंशी बजती हो।
सुनते ही मोहित हो जाता चाहे कितना भी नीरस हो।
कहते लोग जगद्गुरु श्रीमन् हमको देवगुरु लगते हो।
क्योंकि आपश्री जैसी वाणी देवगुरु ही कह सकते हैं।
हे देवगुरु हे जगद्गुरु, लो श्री चरणों में नमस्कार।
यह सेवक नत श्रीचरणों में करें शिष्यता अंगीकार।।

□□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक
पौष कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
सप्तमी	मंगलवार	मघा	8 दिसम्बर	—
अष्टमी	बुधवार	पू०फा०	9 दिसम्बर	श्रीदुर्गाष्टमी
नवमी	गुरुवार	उ०फा०	10 दिसम्बर	—
दशमी	शुक्रवार	हस्त	11 दिसम्बर	—
एकादशी	शनिवार	चित्रा	12 दिसम्बर	सफला एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	रविवार	स्वाति	13 दिसम्बर	प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	सोमवार	विशाखा	14 दिसम्बर	—
चतुर्दशी	मंगलवार	अनुराधा	15 दिसम्बर	धनु राशि में सूर्य-संक्रान्ति दिवस
अमावस्या	बुधवार	ज्येष्ठा	16 दिसम्बर	मलमास प्रारम्भ अमावस्या

पौष शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, उत्तरायण शिशिर ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	गुरुवार	मूल	17 दिसम्बर	—
द्वितीया	शुक्रवार	पू०षा०	18 दिसम्बर	चन्द्रदर्शन
तृतीया	शनिवार	उ०षा०	19 दिसम्बर	—
चतुर्थी	रविवार	श्रवण	20 दिसम्बर	श्रीगणेश चतुर्थी
पंचमी	सोमवार	धनिष्ठा	21 दिसम्बर	पंचक प्रारम्भ 5/2 सायंकाल से
षष्ठी	मंगलवार	शतभिषा	22 दिसम्बर	—
षष्ठी	बुधवार	शतभिषा	23 दिसम्बर	षष्ठी तिथि की वृद्धि
सप्तमी	गुरुवार	पू०भा०	24 दिसम्बर	श्रीगुरु गोविन्द सिंह जयन्ती
अष्टमी	शुक्रवार	उ०भा०	25 दिसम्बर	श्रीदुर्गाष्टमी
नवमी	शनिवार	रेवती	26 दिसम्बर	पंचक समाप्त 2 बजकर 56 मिनट दिन में
दशमी	रविवार	अश्विनी	27 दिसम्बर	—
एकादशी	सोमवार	भरणी	28 दिसम्बर	पुत्रदा एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	मंगलवार	कृतिका	29 दिसम्बर	भौम प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	मंगलवार	कृतिका	29 दिसम्बर	त्रयोदशी तिथि का क्षय
चतुर्दशी	बुधवार	रोहिणी	30 दिसम्बर	—
पूर्णिमा	गुरुवार	मृगशिरा	31 दिसम्बर	चन्द्रग्रहण रात 12/22 मोक्ष रात्रि 1/24 पर सत्यनारायण व्रत

माघ कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शिशिर ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शुक्रवार	पुनर्वसु	1 जनवरी 2010	—
द्वितीया	शनिवार	पुष्य	2 जनवरी	—
तृतीया	रविवार	श्लेषा	3 जनवरी	श्रीगणेश चतुर्थी संकट चतुर्थी
चतुर्थी	सोमवार	मघा	4 जनवरी	—
पंचमी	मंगलवार	पू०फा०	5 जनवरी	—
षष्ठी	मंगलवार	पू०फा०	5 जनवरी	षष्ठी तिथि का क्षय